महर्षि ज्योतिष

(Maharishi Jyotish)

परिचय (Introduction)

ज्योतिष षास्त्र की व्युत्पत्ति 'ज्योतिषांसूर्यादिग्रहाणां बोधकं षास्त्रम्' की गई है अर्थात सूर्यादिग्रह और काल का बोध कराने वाले षास्त्र को ज्योतिष षास्त्र कहा जाता है। कुछ मनीषियों का मत है कि नभ मंडल में स्थित ज्योति सम्बन्धी विविध विषयक विद्या को ज्योति विद्या कहते हैं। जिसे षास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन हो वह ज्योतिष षास्त्र है।

षाष्वत वेदो के प्रथम वेद ऋग्वेद में ग्रह नक्षत्रों का वर्णन उपलब्ध है। महर्षियों द्वारा प्रस्फुरित इस षास्त्र पर गुरू षिष्य परम्परा चिंतन व संषोधन – संवर्धन होते रहे है मनुष्य जाति के इतिहास में जितनी भी खोज आज तक हुई है उसमें ऐसा कोई भी समय नहीं था जबकि ज्योतिष मौजूद न रहा। ज्योतिष षास्त्र के व्याख्याताओं के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक ये दो लक्ष्य रहे हैं। व्यावहारिक कोई भी कार्य दिक् देष एवं काल के बिना होना संभव नहीं है अतः इस षास्त्र का प्रथम उद्देष्य मानव समाज को दिक् देष एवं काल के सम्बन्ध में परिज्ञान कराना है । सांसारिक कोई भी कार्य इन तीन के ज्ञान के बिना व्यावहारिक जीवन की कोई भी क्रिया सम्यक प्रकार से संपादित नहीं हो सकती है। अतएव सुचारू रूप से दैनंदिन कार्यों को संचालन करना ज्योतिष का व्यावहारिक उद्देष्य है। पारमार्थिक दृष्टि से परिषीलन करने पर ज्योतिष का रहस्य परब्रह्म को प्राप्त कराना है। यद्यपि ज्योतिष तर्क षास्त्र है इसका प्रत्येक सिद्धांत सहत बताया गया है किन्तु इसकी नींव पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस षास्त्र की समस्त क्रियाऐं बिंदु षून्य के आधार पर चलती हैं जो कि निर्गुण निराकार ब्रह्म का प्रतीक है।

बिन्दु धैर्य और विस्तार से रहित अस्तित्व वाला माना गया है यद्यपि परिभाषा की दृष्टि से षून्य है पर वास्तव में वह अत्यन्त सूक्ष्म कल्पनातीत निराकार वस्तु है। केवल व्यवहार चलाने के लिए उसे कागज या स्लेट पर अंकित कर लेते हैं आगे चलकर यही बिन्दु गतिषील होता हुआ रेखा के रूप में परिवर्तित होता है, अर्थात जिस प्रकार से 'एकोऽहंबहुस्याम' कामना उपाधि के कारण माया का आविर्भाव हुआ है, उसी प्रकार एक गुण दैर्ध्य वाली रेखा उत्पन्न हुई है।

ज्योतिष में बिन्दु ब्रह्म का प्रतीक है और रेखा माया का प्रतीक है इन दोनों के संयोग से ही क्षेत्रात्मक बीजात्मक एवं अंषात्मक गणित का निर्माण हुआ है जो ज्योतिष का प्राण है। छान्दोग्य उपनिषद में ब्रह्म का वर्णन करते हुए बताया है कि मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके पूर्व संकल्पों और कामनाओं का परिणाम है तथा इस जीवन में वह जैसा संकल्प करता है वैसा ही यहां से जाने पर वह बन जाता है अतएव पूर्ण प्राणमय मनोमय प्रकाषरूप एवं समस्त कामनाओं और विषयों के अधिष्ठान भूत ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए।

उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष के तत्वों के आधार पर वर्तमान जीवन का निर्माण कर मनुष्य प्रकाष रूप – ज्योतिः स्वरूपा ब्रह्म का सानिध्य प्राप्त कर सकता है सुदूर प्राचीन काल में ज्योतिष का स्वरूप विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता है। जैसा कि वेदों में कई जगह सूर्य चंद्र एवं नक्षत्र की स्तुति पूरक मंत्र आये हैं।

प्राचीन काल में ज्योतिषः– पदार्थों, नक्षत्र, तारों आदि के स्वरूप को ज्योतिष कहा जाता था। उस काल में केवल दृष्टि पर्यवेक्षण द्वारा नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करना ही अभिप्रेत था।

ब्राह्मण और आरण्यकों के समय में नक्षत्रों की आकृति स्वरूप गुण एवं प्रभाव का परिज्ञान प्राप्त करना ज्योतिष माना जाने लगा।

आदिकाल में नक्षत्रों के षुभा षुभ फलानुसार कार्यों का विवेचन तथा ऋत अयन दिन मान लग्न आदि के षुभाषुभानुसार विधायक कार्यों को करने का ज्ञान प्राप्त करना भी इस षास्त्र की परिभाषा में परिगणित हो गया।

वेदांग ज्योतिष के प्रणयन तक ज्योतिष के गणित और फलित ये दो भेद स्पष्ट नहीं हुए थे आगे चलकर ज्ञानोन्नति के साथ–साथ राषि और ग्रहों के स्वरूप रंग दिषा तत्व इत्यादि के विवेचन भी इसके अन्तर्गत समाहित हो गए।

प्रश्न 1.1 ज्योतिष शास्त्र क्या है ? श्लोक सहित समझाइए ?

प्रश्न 1.2 ज्योतिष शास्त्र का लक्ष्य स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 1.3 ज्योतिष शास्त्र का दार्शनिक भाव स्पष्ट कीजिए ?

अभ्यास : – ज्योतिष शास्त्र के श्लोक को कंठस्थ कीजिए ।

ज्योतिष की प्रमुख शाखायें (Main Branches of Jyotish) –

ज्योतिष की प्रमुख षाखाऐं स्कन्धत्रय नाम से जानी जाती हैं,

1. सिद्धांत ज्योतिष 2. संहिता ज्योतिष 3. होरा ज्योतिष।

सिद्धांत ज्योतिष – इस में त्रुटि से लेकर कल्पकाल तक की काल गणना सौर चन्द्र मासों का प्रतिपादन ग्रह गतियों का निरूपण, व्यस्त, अव्यक्त गणित का प्रयोजन विविध प्रष्नोत्तर विधि ग्रह नक्षत्र की स्थिति नाना प्रकार के तुरीय, नलिका, इत्यादि यन्त्रों की निर्माण विधि देष, कालज्ञान के अनन्यतम उपयोगी अंग अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या तद्धृति, समषंकु इत्यादि का आनयन रहता है। प्राचीन काल में इसकी परिभाषा केवल सिद्धांत गणित के रूप में मानी जाती थी। आदिकाल में अंकगणित द्वारा ही अहर्गण मान साधकर ग्रहों का आनयन करना इस षास्त्र का प्रधान प्रतिपाद्य विषय था। पूर्वमध्य काल में इसकी यह परिभाषा ज्यों की त्यों अव्यस्थित रही। उत्तरमध्य काल में गणित के सिद्धांत, तन्त्र व करण तीन भेद प्रकट हुए। जिसमें सृष्टियादि से इष्ट दिन पर्यनत अहर्गण बनाकर ग्रह सिद्ध किए जाए वह 'सिद्धांत', जिसमें युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रहगणित किया जाय वह 'तन्त्र' और जिसमें कल्पित इष्ट वर्ष का युग मानकर उस युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन का अर्धगण लाकर महानयन किया जाये उसे 'करण' कहते हैं। उत्तरमध्य काल के अन्त में गणित ज्योतिष की परिभाषा विस्तृत होने की अपेक्षा संकुचित दिखलाई देती है। क्योंकि इस युग में क्रियात्मक ग्रहगणित को छोड़ वासनात्मक (उत्पत्ति विषयक) ग्रहगणित का ही आश्रय ज्योतिषियों ने लिया जिसमें वास्तविक ग्रहगणित का विकास कुछ रूक सा गया। यद्यपि करण–ग्रन्थों की सारणियॉ तैयार की गई थीं किन्तु आगे आकाष निरीक्षण और व्यक्त क्रियाात्मक ग्रहगणित के अभाव में सारणियों में संषोधन न हो सके। इस प्रकार गणित ज्योतिष की परिभाषा विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होती है।

संहिता ज्योतिष – इसमें भूषोधन, दिक्षोधन, षल्योद्धार, मेलापक आयाद्यानयन गृहोपकरण, इष्टिका का द्वार देहारम्भ, गृहप्रवेष, जलाषल निर्माण, मांगलिक कार्यों के मुहुर्त उल्कापात वृष्टि, ग्रहों के उदयास्त का फल ग्रहचार का फल एवं ग्रहणफल आदि बातों का निरूपण विस्तार पूर्वक किया गया है जीवनोपयोगी आयुर्वेद की चर्चायें भी संहिता के अन्तर्गत की गयी है संहिता एकत्व रूप एवं वृहत रूप होने के कारण इस षास्त्र के अंतर्गत जीवन से सम्वद्ध सभी विषय समाहित हैं।

होरा ज्योतिष – इसकी उत्पत्ति 'अहोरात्र' षब्द से आदि षब्द 'अ' औश्र अन्तिम षब्द 'त्र' का लोप कर देने से होरा षब्द बनता है जिसका अर्थ होता है जातक इसके द्वारा जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार उसके जीवन के फलाफल का निरूपण किया जाता है। इस षास्त्र में जन्मकुण्डली के द्वादष भावों के फल उसमें स्थित प्रभाव एवं दृष्टि रखने वाले ग्रहों के अनुसार विस्तार पूर्वक प्रतिपादित किए गये हैं। मानव जीवन के सुख दुःख इष्रूट अनिष्ट, उन्नति, अवनति, भाग्योदय आदि समस्त षुभाषुभो का वर्णन इसके अन्तर्गत किया गया है। होरा ग्रन्थों में फल कथन के दो प्रकार हैं। एक जातक के जन्म जक्षत्र पर और दूसरे में जन्म लग्नादि द्वादष भावों से विस्तार पूर्वक विभिन्न दृष्टि कोणों से फल कथन की प्रणाली

बतायी गयी है नवी, दसवी और ग्यारहवी षदी के होरा षास्त्रकारो ने ग्रहबल, ग्रहवर्ग, प्रष्नोत्तरी आदि दषाओं के फलों को इस षास्त्र की परिभाषा के अन्तर्गत मान लिया है।

प्रश्न 1.4 स्कन्धत्रय से क्या तात्पर्य है स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 1.5 मानव जीवन के सुख–दुःख, इष्ट–अनिष्ट एवं उन्नति आदि की व्याख्या ज्योतिष के किस धारा के अंतर्गत आते है ?

बतायी गयी है नवी, दसवी और ग्यारहवी षदी के होरा षास्त्रकारो ने ग्रहबल, ग्रहवर्ग, प्रष्नोत्तरी आदि दषाओं के फलों को इस षास्त्र की परिभाषा के अन्तर्गत मान लिया है।

प्रश्न 1.4 स्कन्धत्रय से क्या तात्पर्य है स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 1.5 मानव जीवन के सुख–दुःख, इष्ट–अनिष्ट एवं उन्नति आदि की व्याख्या ज्योतिष के किस धारा के अंतर्गत आते है ?

मानवजीवन और ज्योतिष

(Human life and Jyotish)

मनुष्य स्वभाव से ही अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति ने ज्योतिष के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य किया है। फलतः वह अपने जीवन के भीतर ज्योतिष तत्वों का प्रत्यक्ष दर्षन करना चाहता है। इसी कारण वह षास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभव को ज्योतिष की कसौटी पर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिष का जीवन में क्या स्थान है ?

समस्त ज्ञान की पृष्ठभूमि दर्षनषास्त्र है। यही कारण है कि भारत अन्य प्रकार के ज्ञान को दार्षनिक मापदण्ड द्वारा मापता है। इसी अटल सिद्धांत के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टिकोण से देखता है। भारतीय दर्षन के अनुसार आत्मा अमर है, केवल यह कर्मों के अनादि प्रभाव के कारण पर्यायों को बदला करता है। आध्यात्मषास्त्र का कथन है कि दृष्य सृष्टि केवल नाम रूप या कर्म ही नहीं है, बल्कि इसका नामरूपात्मक आवरण के लिए आधारभूत एक अरूपी, स्वतन्त्र और अविनाषी आत्मतत्व है तथा प्राणीमात्र के षरीर में रहने वाला यह तत्व नित्य एवं चैतन्य है, केवल कर्मबन्धन के कारण वह परतन्त्र और विनाषक दिखालाई पड़ता है। वैदिक दर्षनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण यह तीन भेद माने गये हैं किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया जो कर्म है चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्मों में वह सब संचित कहलाता है। संचित में से जितने कर्मों के फल को वर्तमान जीवन में भोगना होता है उतने ही को प्रारब्ध कहते हैं। तात्पर्य यह है कि संचित अर्थात् समस्त जन्म–जन्मान्तर के कर्मों के संग्रह में से एक छोटे भाग को प्रारब्ध कहते हैं। यहां इतना स्मरण रखना होगा कि समस्त संचित का नाम प्रारब्ध नहीं बल्कि जितने भाग का वर्तमान जीवन में भोगना आरम्भ हो गया है प्रारब्ध है। जो कर्म अभी हो रहा है या जो अभी किया जा रहा है वह क्रियमाण है। एवं आगे जीवन के लिए संचित होता जाता है । इस तरह इन तीन प्रकार के कर्मों के कारण आत्मा अनेक जन्मों–पर्याओं को धारण कर संस्कार अर्जन करता चला आ रहा है।

आत्मा के साथ अनादिकालीन कर्म–प्रभाव के कारण लिंगषरीर–कार्मण षरीर और भौतिक स्थूल षरीर का सम्बन्ध है जब एक स्थान से आत्मा इस भौतिक षरीर का त्याग करता है तो लिंगषरीर उसे अन्य स्थूल षरीर की प्राप्ति में सहायक होता है। इस स्थूल भौतिक षरीर की विषेषता यह है कि इसमें प्रवेष करते ही आत्मा जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों की निष्चित स्मृति को खो देता है। इसीलिए ज्योतिर्विदों ने प्राकृतिक ज्योतिष के आधार पर कहा है कि यह आत्मा मनुष्य के वर्तमान स्थूल षरीर में रहते हुए भी एक से अधिक जगत् के साथ संबंध रखता है। मानव का भौतिक षरीर प्रधानतः ज्योतिः मानसिक और पौद्गलिक इन तीन उपषरीरों में विभक्त है। यह ज्योति उपषरीर Astrals's body द्वारा

नक्षत्र जगत से मानसिक उपषरीर द्वारा मानसिक जगत से और पौद्गलिक उपषरीर द्वारा भौतिक षरीर से संबद्ध है। अतः मानव प्रत्येक जगत से प्रभावित होता है तथा अपने भाव–विचार और क्रिया द्वारा प्रत्येक जगत को प्रभावित करता है। उसके वर्तमान षरीर में ज्ञान, दर्षन सुख ऐष्वर्य आदि अनेक षक्तियों का धारक आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथा षरीर प्रमाण रहने पर भी अपनी चैतन्य क्रियाओं द्वारा विभिन्न जगतों में कार्य करता है। आत्मा की इस क्रिया की विषेषता के कारण ही मनुष्य के व्यक्तित्व को बाह्य और आन्तरिक दो भागों में विभक्त किया है।

वाह्यव्यक्तित्व – वह है जिसने इस भौतिक षरीर के रूप में अवतार लिया है यह आत्मा की चैतन्य क्रिया की विषेषता के कारण अपने पूर्व जन्म के निष्चित प्रकार के विचार–भाव और क्रियाओं की ओर झुकाव प्राप्त करता है तथा इस जीवन के अनुभवों के द्वारा इस व्यक्तित्व के विकास में वृद्धि होती है और यह धीरे–धीरे विकसित होकर आन्तरिक व्यक्तित्व में मिलने का प्रयास करता है।

आन्तरिक व्यक्तित्व – वह है जो अनेक वाह्य व्यक्तित्वों की स्मृतियों अनुभवों और प्रवृत्तियों का संष्लेषण अपने में रखता है। वाह्य और आंतरिक इन दोनों व्यक्तित्व संबंधी चेतना के ज्योतिष में विचार और अनुभव और क्रिया के तीन रूप माने गये हैं। वाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप आंतरिक व्यक्तित्व के तीन रूपों से सम्बद्ध है पर आन्तरिक व्यक्तित्व के तीन रूप अपनी निजी विषेषता और षक्ति रखते हैं। जिससे मनुष्य के भौतिक मानसिक और आध्याात्मिक इन तीनो जगतों का संचालन होता है। मनुष्य का अन्तः करण इन तीनों व्यक्तित्व के उक्त तीनों रूपों को मिलाने का कार्य करता है। दूसरे दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि यह तीनों रूप एक मौलिक अवस्था में आकर्षण और विकर्षण की प्रवृत्ति द्वारा वाह्य व्यक्तित्व को और विकर्षण की प्रवृत्ति आंतरिक व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। और इन दोनों के बीच में रहने वाला अन्तः करण इन्हें संतुलन प्रदान करता है। मनुष्य की उन्नति और अवनति इस संतुलन के पलड़े पर ही निर्भर करती है।

मानव जीवन के बाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप और आन्तरिक व्यक्तित्व के तीन रूप तथा एक अन्तः करण इन सात के प्रतीक सौर जगत में रहने वाले सात ग्रह माने गये हैं।

उपर्युक्त सात रूप सब प्राणियों के एक से नहीं होते हैं क्योंकि जन्म–जन्मांतरों के संचित प्रारब्ध कर्म विभिन्न प्रकार के हैं, अतः प्रतीक रूप ग्रह अपने–अपने प्रतिरूपय के संबंध मे विभिन्न प्रकार की बातें प्रकट करते हैं । भारतीय दर्षन मे यथा पिण्डे तथा ब्रहमाण्डे का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इसका तात्पर्य यह है कि वास्तविक सौर जगत मे सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों के भ्रमण मे जो नियम कार्य करते है वे ही नियम प्राणी मात्र के षरीर में स्थित सौर जगत के ग्रहों के प्रतिदिनों के भ्रमण करने मे भी काम करते हैं । अतः आकाष स्थित ग्रह षरीर स्थित ग्रहों के प्रतीक हैं ।

प्रथम कल्पनानुसार बाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप और आंतरिक व्यक्तित्व के तीन रूप तथा एक अन्तःकरण इन सातों प्रतिरूपयों के प्रतीक ग्रह निम्न प्रकार है ।

1. **वृहस्पति** – वाह्य व्यक्तित्व के प्रथम रूप विचार का प्रतीक वृहस्पति है यह प्राणी मात्र के षरीर का प्रतिनिधित्व करता है और षरीर संचालन के लिए रक्त प्रदान करता है। जीवित प्राणी के रक्त में रहने वाले कीटाणुओं की चेतना से इसका संबंध है इस प्रतीक द्वारा वाह्य व्यक्तित्व के रूप में होने वाले कार्यों का विष्लेषण किया जाता है। ज्योतिष षास्त्र में प्रत्येक ग्रह से किसी भी मनुष्य के आत्मिक, षारीरिक और

अनात्मिक इन तीन प्रकार के दृष्टिकोण से फल का विचार किया जाता है। कारण स्पष्ट है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के किसी भी रूप का प्रभाव षरीर आत्मा और वाह्य जड़ चेतन पदार्थ जो षरीर से भिन्न है पर पड़ता है उदाहरण के लिये वाह्य व्यक्तित्व के प्रथम रूप विचार को लिया जा सकता है मनुष्य के विचार का प्रभाव षरीर और चेतना षक्ति–स्मृति, अनुभव प्रत्यभिज्ञा आदि तथा मनुष्य से सम्बद्ध अन्य वस्तुओं पर पड़ता है। इन तीनों से अलग रहकर मनुष्य कुछ नहीं कर सकेगा उसका जीवन जडवत हो जायेगा अतएव प्रथम रूप के प्रतीक वृहस्पति का विवेचन निम्न प्रकार जानना चाहिए।

आत्मा – इस दृष्टिकोण से उदारता, सौन्दर्य प्रेम, षक्ति, भक्ति, ज्ञान ज्योतिष तन्त्र, मन्त्र विचार षक्ति इत्यादि आत्मिक भावों का प्रतिनिधित्व करता है।

शरीर – इस दृष्टिकोण से पैर, जंघा जिगर, पाचन क्रिया रक्त एवं नसों का प्रतिनिधित्व करता है।

अनात्मा – इस दृष्टिकोण वृहस्पति, मन्दिर पुजारी, मन्त्री न्यायाधीष, षिक्षासंस्थायें, विष्व विद्यालय, सभाएँ जनता के उत्सव, दान सहानुभूति आदि का प्रतिनिधित्व करता है।

2. **मंगल** वाह्य व्यक्तित्व के द्वितीय रूपा का प्रतीक मंगल है यह इन्द्रिय ज्ञान और आनन्देच्छा का प्रतिनिधित्व करता हे जितने भी उत्तेजक और सम्वेदना जन्य आवेग है उनका यह प्रधान केन्द्र है। वाह्य आनन्द दायक अनुभवों की स्मृतियों को जागृत करता है। यह प्रधान रूप से इच्छा का प्रतीक है।

आत्मिक दृष्टि से – यह साहस, बहादुरी, दृढ़ता आत्मविष्वास, क्रोध लड़ाकू प्रवृत्ति एवं प्रभुत्व प्रभृति भावों और विचारों का प्रतिनिधित्व करता है।

शारीरिक दृष्टि से – सिर खोपड़ी नाक एवं गाल का प्रतीक है इसके द्वारा संक्रामक रोग, घाव, आपरेषन, रक्तदोष दर्द आदि का पता लगता है।

अनात्मिक दृष्टि से – यह सैनिक, डाक्टर, प्रोफेसर, इन्जीनियर रसायनिक, नाई, बढ़ई, लुहार मषीन का कार्य करने वाला, मकान बनाने वाला खेल एवं खेल से सम्बन्धित सामान आदि का प्रतिनिधित्व करता है।

3. **चन्द्रमा** – वाह्य व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतीक चन्द्रमा है यह मानव पर षारीरिक प्रभाव डालता है और विभिन्न अंगों तथा उनके कार्यों में सुधार करता है वाह्य जगत की वस्तुओं द्वारा जो क्रियाऐं होती हैं, उनका इससे विषेष संबंध है। मानव षरीर के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनषील भावों का प्रतिनिधि है।

आत्मिक दृष्टि से – यह सम्वेदना आन्तरिक इच्छा, उतावलापन, घरेलू जीवन की भावना, कल्पना एवं लाभेच्छा पर प्रभाव डालता है।

शारीरिक दृष्टि से – पेट, स्तन, गर्भाषय योनिस्थान, ऑख एवं नारी के समस्त गुप्तांगों पर प्रभाव डालता है।

अनात्मिक दृष्टि से – यह ष्वेत रंग, जहाज, बन्दरगाह, मछली, जल तरल पदार्थ नर्स, दासी, भोजन, रजत एवं बैगनी रंग के पदार्थों पर प्रभाव डालता है।

4. **षुक्र** – आन्तरिक व्यक्तित्व के प्रथम रूप का प्रतीक षुक्र है यह सूक्ष्म मानव चेतनाओं की विधीय क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करता है। पूर्णवली षुक्र निःस्वार्थ प्रेम के साथ–साथ प्राणी मात्र के प्रति भातृत्व–भावना का विकास करता है।

आत्मिक दृष्टि से – स्नेह सौन्दर्य, आराम, आनन्द, विषेष, प्रेम स्वच्छता, परख–बुद्धि कार्य क्षमता आदि पर इसका प्रभाव पड़ता है।

भाारीरिक दृष्टि से – गला, गुर्दा, आकृति, वर्ण, केष जहॉ तक सौन्दर्य से सम्बन्ध हैं, साधारणतः षरीर संचालित करने वाले अंग एवं लिंग आदि पर इसका प्रभाव पड़ता है।

अनात्मिक दृष्टि से – यह सुन्दर वस्तुऍ, आभूषण, आनन्दायक चीजे, नाचगान, वाद्य, सजावट की चीजें कलात्मक वस्तुऍ एवं भोगोपभोग की सामग्री आदि पर प्रभाव डालता है।

5. **बुध** – आन्तरिक व्यक्तित्व के द्वितीय रूप का प्रतिनिधि बुध है। यह प्रधान रूप से आध्यात्मिक षक्ति का प्रतीक है इसके द्वारा आन्तरिक प्रेरणा, सहेतुक – निर्णयात्मक बुद्धि, वस्तुपरीक्षण–षक्ति समझ और बुद्धिमानी आदि का विष्लेषण किया जाता है इस प्रतीक में विषेषता यह रहती है कि गम्भीरता पूर्वक किये गये विचारों का विष्लेषण बड़ी खूबी से करता है।

आत्मिक दृष्टि से – यह सक्षम स्मरण षक्ति खण्डन मण्डन षक्ति सूक्ष्मकलाओं की उत्पादन षक्ति एवं तर्क षक्ति आदि का प्रतिनिधि है।

शारीरिक दृष्टि से – यह मस्तिष्क, स्नायु क्रिया, जिहवा, वाणी, हाथ तथा कलापूर्ण कार्योत्पादक अंगों पर प्रभाव डालता है।

अनात्मिक दृष्टि से – पाठषाला, विद्यालय, षिक्षण, विज्ञान, वैज्ञानिक और साहित्यिक स्थान, प्रकाषन–स्थान, सम्पादक, लेखक, प्रकाषक, पोस्टमास्टर व्यापारी एवं बुद्धि जीवियों पर इसका विषेष प्रभाव पड़ता है। पीलेरंग और धातु पर भी यह अपना प्रभाव डालता है।

6. **सूर्य** – आन्तरिक व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतिनिधि सूर्य है यह पूर्ण दैवत्व की चेतना का प्रतीक है, इसकी सात, किरणें है जो कार्यरूप से भिन्न होती हुई भी इच्छा के रूप में पूर्ण होकर प्रकट होती है। मनुष्य के विकास में सहायक तीनों प्रकार की चेतनाओं के सन्तुलित रूप का यह प्रतीक है यह पूर्ण इच्छा षक्ति, ज्ञानषक्ति, सदाचार, विश्राम षान्ति जीवन की उन्नति एवं विकास का द्योतक है।

आत्मिक दृष्टि से – यह प्रभुता, ऐष्वर्य, प्रेम, उदारता, महत्वाकॉक्षा, आत्मविष्वास, आत्मनियंत्रण, विचार और भावनाओं का सन्तुलन एवं सहृदय का प्रतीक है।

शारीरिक दृष्टि से – हृदय रक्त संचालन, नेत्र, रक्त–वाहक छोटी नसे दांत कान आदि अंगों का प्रतिनिधि है।

अनात्मिक दृष्टि से – राजा मंत्री, सेनापति, सरदार, आविष्कारक, पुरातत्ववेत्ता आदि पर अपना प्रभाव डालता है।

7. **अन्तःकरण का प्रतीक शनि** – षनि अन्तःकरण का प्रतीक है यह बाह्य चेतना एवं आन्तरिक चेतना को मिलाने मे सेतु का काम करता है । प्रत्येक नव जीवन मे आन्तरिक व्यक्तित्व से जो कुछ प्राप्त होता है और जो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों से प्राप्त होता है उससे मनुष्य को यह आत्मोन्नत करता है । यह प्रधान रूप से अहं भावना का प्रतीक होता हुआ भी व्यक्तिगत जीवन के विचार,इच्छा और कार्यों के संतुलन का भी प्रतीक है । विभिन्न प्रतीकों से मिलने पर यह नानाप्रकार से जीवन के रहस्यों को अभिव्यक्त करता है ।

आत्मिक दृष्टि से – तात्विक ज्ञान, विचार ज्ञानतन्त्रय, नायकत्व, लग्नषीलता कार्यपरायणता, आत्मसंयम, धैर्य, दृढ़ता, गंभीरता विचार शीलता एवं कार्य क्षमता का प्रतीक है ।

शारीरिक दृष्टि से – हड्डियों नीचे के दांत, बड़ी आतें एवं मांषपेषियों पर प्रभाव डालता है ।

अनात्मिक दृष्दि से – कृषक, हलवाहक, पत्रवाहक, कुम्हार, माली, मठाधीष, विधिवेत्ता, कृपण, पुलिस अफसर उपवास करने वाले साधु सन्यासी आदि व्यक्ति का प्रतिनिधि करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सौर जगत के सात ग्रह मानव जीवन के विभिन्न अवयवों के प्रतीक हैं इन सातों की क्रिया–फल द्वारा ही जीवन का संचालन होता है। और मानव के साथ ग्रहों का अभिन्न संबंध है ।

सारांश

वैदिक वाड्मय में ज्योतिष वेदांगों मे आता है । वेदांगों मे षिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष इस क्रम मे है। अतः ज्योतिष वेदों का प्रमुख अंग है । ज्योतिष को वेदों का नेत्र भी कहा जाता है।वेद अर्थात् पूर्ण ज्ञान इस ज्ञान को देखने का साधन ज्योतिष है।मनुष्य जीवन के पूर्ण विकास के लिए ज्ञानार्जन आवष्यक है ।जीवन का अधिकतम विकास कैसे हो इसी की खोज मे हमारा संबंध ज्योतिष से हुआ ज्योतिष के माध्यम से हम अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं चाहे ये विकास षारीरिक हो, मानसिक हो अथवा आध्यात्मिक हो। जीवन मे आने वाले अनिष्टों, दुखों एवं विभिन्न प्रकार की विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला हम सरलता से कर सकते हैं । महर्षि ज्योतिष मे इसका विषेष रूप से वर्णन आता है।

प्रश्न 1.6 भारतीय वेदांग के अनुसार कर्म कितने प्रकार के होते हैं प्रत्येक की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए ?

प्रश्न 1.7 ग्रह का शरीर के किस भावना, विचार एवं क्रिया से संबंध होता है ?

प्रश्न 1.8 होरा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ?

प्रश्न 1.9 ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख प्रवृतकों के नाम लिखो ?

अभ्यास – **सात ग्रहों को कंठस्थ कीजिए ।**
नक्षत्रों को कंठस्थ कीजिए ।

शब्दावली – स्कन्धत्रय – सिद्धांत ज्योतिष, संहिता ज्योतिष, होरा ज्योतिष
कर्म – संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियामाण कर्म

Pages 1 - 15

अध्याय– 2

महर्षि स्थापत्यवेद

(Maharishi Sthapatyaveda)

उद्देश्य (Object)– सभी मनुष्य, सुखी होना चाहते हैं, षान्ति चाहते हैं। यह मानव का स्वभाव है उसका एक प्राकृतिक गुण है। कैसे ? पानी का स्वाभाविक गुण है षीतलता, यदि पानी को आग पर कुछ समय रख दिया जाए तो वह पानी गर्म हो जाता है, लेकिन आग से हटा लेने पर, वह पानी अपना स्वाभाविक धर्म षीतलता होने के कारण धीरे–धीरे ठण्डा हो जाता है।

ठीक उसी प्रकार मनुष्य या कोई व्यक्ति का स्वाभाविक गुण या प्रतिभा प्रकट कैसे हो, उसका स्वाभाविक विकास कैसे हो– इसके लिए सबसे आवष्यक व पहली शर्त है कि वह ऐसे वातावरण, ऐसे परिवेष, ऐसी जगह पर रहे, जो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति या गुणों के अनुरूप हो, ताकि उस व्यक्ति के सहज गुण प्रकट हो सकें, वह विकास कर सके, उसे उसके कार्य में रूकावट का अनुभव न हो, प्रकृति या नेचर, उसे पूरा–पूरा सहयोग दे।

वास्तु से प्रगति

हम अपने स्वयं के जीवन में देखते हैं कि कभी–कभी हमारे कार्य, विषेष रूप से तथा थोड़े से श्रम से ही सफल हो जाते हैं, जबकि कभी अत्यधिक श्रम करने पर भी उस कार्य में उतनी सफलता नहीं मिलती, कारण क्या हो सकता है।

व्यक्ति जिस मकान में रहता है, जहां पर काम करता है, उसका, इन सब बातों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह सब उसके निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करते हैं।

पंच ज्ञानेन्द्रिय

हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियॉ हैं, जिनसे हम ज्ञान ग्रहण करते हैं। वे इन्द्रियॉ इस प्रकार हैं– ऑख, नाक, कान, जीभ व त्वचा।

हम जो ज्ञान ग्रहण करते हैं, उसका लगभग 80 से 85 प्रतिषत भाग हम ऑख से ग्रहण करते हैं।

ऑख से हम आकार व रंग देखते हैं। कान से हम सुनते हैं। नाक से हम सूंघते हैं। त्वचा से हम स्पर्ष करते हैं ठण्डा–गर्म आदि का अनुभव करते हैं। जीभ से हम स्वाद लेते हैं।

जिस स्थान पर हम रहते हैं, जहॉ कार्य करते हैं, उस स्थान का आकार व रंग यदि हमारी आवष्यकता व मन के अनुकूल हो (तो नेत्र इन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी), उस स्थान पर, मन के अनुकूल ध्वनि हो (तो कर्ण इंन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी), गन्ध हो (तो घ्राणेन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी) तथा उस स्थान का तापमान आदि (एवं बैठक आदि की व्यवस्था नरम आदि हो) हमारे अनुकूल हो (त्वचा अनुकूलता अनुभव करेगी, स्पर्ष इन्द्रिय सन्तूष्ट होगी) इस प्रकार, हमारी पॉचों ज्ञानेन्द्रियॉ सन्तुष्ट हो जाएगीं।

इन्द्रियों के सन्तुष्ट होंने पर मन प्रसन्न होगा। जिससे वह (मनं) षीघ्रता से तथा सही (उचित) निर्णय लेगा (करेगा)।

निर्णय सही हो, सही समय पर हो तो जिस लक्ष्य को निर्धारित किया हो, जो कार्य सोचा है, उसे प्राप्त करने में आसानी होती है। लक्ष्य प्राप्त करने से, सफलता प्राप्त करने से, उत्साह बढ़ता है, अर्थ अर्थात् धन की प्राप्ति होती है, जिससे समृद्धि आती है। धर्म से कमाया गया अर्थ या धन, अपने साथ सुख व षान्ति लाता ही है। जिससे व्यक्ति का उत्तरोतर विकास होता है। जिससे, वह सन्तुष्ट होकर सबके साथ मिलजुल कर, भाईचारे का व्यवहार करता है तथा बदले में भी वही पाता है, सीधे षब्दों में कहें, तो व्यवहार कुषल होता है, झुंझलाता नहीं है, कड़वा नहीं बोलता है। सब उसके विकास में सहायक होते हैं। परिवार और अधिक खुष रहता है, परिवार के जनों की इच्छाओं की पूर्ति होती है, जिससे वो भी खुष रहते हैं।

यह सब, इस पर निर्भर करता है कि आपके निर्णय सही हो व सही समय पर हों। निर्णय सही कैसे हो, यह उस प्रकार के परिवेष, मकान आदि पर निर्भर करता है, जिसमें व्यक्ति निवास करता हे। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी दिनचर्या कैसी है, उसका भोजन क्या है, वह किस प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आदि।

उपरोक्त सभी बातें ही वास्तुषास्त्र का विषय है, वास्तु का क्षेत्र है। इसलिए व्यक्ति वास्तु के अनुरूप निर्माण में रहे, उसके नियमों के अनुसार आचरण करे तो व्यक्ति अपने जीवन में बाधारहित सफलता पा सकता है।

शुभ वास्तु के प्रभाव

- सुख
- समृद्धि
- उत्तम स्वास्थ्य
- समस्यारहित जीवन
- लक्ष्य की प्राप्ति
- उन्नति के अवसर
- प्रगति में प्रकृति का सहयोग
- मित्रता
- भाईचारा
- सुचारू जीवन
- उत्तरोत्तर सुखी
- धर्म, अर्थ, काम सहित मोक्ष की प्राप्ति।

अशुभ वास्तु के दुष्प्रभाव

-	अषान्ति	–	दुःखी जीवन
-	समस्याएँ	–	बाधाएँ
-	षत्रुता	–	रोग
-	जीवन संकट	–	अस्वस्थता
-	उन्नति में रूकावट	–	अस्थिरता
			आदि

1.1 मंगलाचरण (Mangalacharan)

।।श्री गणेषाय नमः।।

अपने यहां किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने के लिये, उस कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए, मंगलाचरण को अत्यन्त आवष्यक माना है।

इसका उद्देष्य जहॉ एक ओर विभिन्न देवी–देवता का आषीर्वाद प्राप्त करना है तो दूसरी ओर इसका उद्देष्य चित्त की एकाग्रता से भी है। सारा कार्य केवल ईष्वर की कृपा, गुरू के आषीर्वाद के ही फलस्वरूप हो रहा है, रचनाकार तो केवल माध्यम है।

वास्तुषास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में सबसे पहले मंगलाचरण है। इसमें देवता की, गुरू की स्तुति की गई है।

जैसे आज के समय में भी, जब हम स्कूल (पाठषाला) या कॉलेज (विष्वविद्यालय) में अध्ययन करते हैं तो सामान्य रूप से सबसे पहले प्रार्थना (जिसे हम प्रेयर के नाम से जानते हैं) की जाती है, इससे मन एकाग्र होता है, चित्त की वृत्तियॉ जो की बहिर्मुखी थीं, बाहर की ओर थी, एकाग्र होती हैं, उसके बाद अध्ययन प्रारम्भ किया जाता है।

यहां भी इस विष्वकर्मा प्रकाष ग्रन्थ में सबसे पहले मंगलाचरण है, जिसमें गणों के नायक गणेष जी की स्तुति, उसके बाद विद्या की देवी सरस्वती तथा उसके पश्चात महेष्वर की स्तुति है–

जयति वरदमूर्तिर्मङलं मंगलानां जयति सकलवंद्या भारती ब्रह्मरूपा।
जयति भुवनमाता चिन्मयी मोक्षरूपा दिशतु मम महेशो वाग्दायः शब्दरूपम्।1।

श्री गणेष को नमस्कार करते हैं, जिनकी ऐसी प्रतिमा (मूर्ति) है, जो वरदान को देने वाली है, जो मंगलों के मंगल हैं, (ऐसे) गणों के स्वामी (मालिक) की जय हो। सबके द्वारा वन्दना की जाने वाली ब्रह्मरूप (अव्यक्त रूपा) सरस्वती की जय हो। चेतन तथा मोक्षरूप, तीनो भुवनों की माता की जय हो। वाग्डय महेष्वर मुझे षब्दरूप ज्ञान प्रदान करे अर्थात् अपनी विचार को षब्दों में व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करें (दें)।

अभ्यास (1) :– मंगलाचरण का श्लोक संस्कृत में याद करें, दोहराए।

1.2 घर की उपयोगिता

किसी भी षास्त्र को प्रारम्भ करने से पहले उस षास्त्र की महिमा का प्रतिपादन किया जाता है। यहॉ इस षास्त्र का विषय वास्तुषास्त्र है तथा वास्तुषास्त्र में भी मुख्य रूप से विषय गृह है अतः यहॉ घर की महिमा का प्रतिपादन इस ष्लोक में किया गया है–

अब्रह्मभुवानाल्लो का गृहास्थाश्रमाश्रिताः।
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयं ह्यहम्।।2।।

(विष्वकर्मा जी कहते हैं कि) ब्रह्म से भुवन तक अर्थात् सृजन तक, जितने भी लोक हैं वे सभी गृहस्थ आश्रम पर आश्रित हैं। (चूँकि गृहस्थाश्रम इतना महत्वपूर्ण है) इसलिए मैं गृह को कब बनवाना शुरू करना चाहिए तथा उस बने हुए घर में कब प्रवेष करना चाहिए? उसके समय को कहता हूँ।

व्याख्या – हमारे यहॉ एक सामान्य परम्परा है कि किसी भी षास्त्र या विषय को षुरू करते हैं तो सबसे पहले उस षास्त्र या विषय की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। यहां इस विष्वकर्म–प्रकाष या वास्तुषास्त्र का विषय वास्तु है, घर है, अतः ग्रंथ में सबसे पहले ग्रह की महिमा को प्रतिपादित किया गया है।

ब्रह्म (अव्यक्त, जहॉ से सारा निर्माण (सृष्टि) की षुरूआत हुई है) से भुवन तक, सारे लोक गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित है। आश्रम चार हैं:– ब्रह्मचर्य आश्रम (आयु जन्म से 25 वर्ष तक), गृहस्थाश्रम (25 से 50 वर्ष की आयु तक, वानप्रस्थ 51 से 75 वर्ष की आयु तक तथा सन्यास 76 से जीवन पर्यन्त तक) इन सभी लोगों का जीवन गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित है, यह बताया गया है। एक बालक भी गृहस्थ (माता–पिता) पर निर्भर रहता है। गृहस्थ के माता–पिता भी गृहस्थ (पुत्र) पर निर्भर रहते हैं तथा सन्यासी भी गृहस्थ पर निर्भर रहता है, अतः चारों आश्रम में सबसे महत्वपूर्ण आश्रम गृहस्थ है।

इस प्रकार से यहॉ गृहस्थाश्रम की महिमा प्रतिपादित की गई है। गृहस्थ आश्रम की महत्ता के साथ–साथ घर की महत्ता प्रतिपादित हो जाती है।

राजवल्लभ आदि अन्य ग्रन्थ में भी ग्रन्थ के प्रारम्भ में घर की महिमा का वर्णन किया गया है–

स्त्रीपुत्रादिक भोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तुनां लयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।

जिस घर में स्त्री, पुत्र आदि का भोग और सुख मिलता है, जिस घर से धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, जो घर प्राणी का विश्राम स्थल है, इतना ही नहीं ठण्ड, वर्षा और गर्मी के भय का, जिससे निवारण होता है और जहॉ बावड़ी, कुऑ का सुख तथा देवमंदिर का अखिलपुण्य मिलता है, यह सब घर में ही मिलता है इसलिए विष्वकर्मा आदि सभी देवता प्रथमतः घर की इच्छा करते हैं।

प्रश्न 2.1	आश्रम कितने होते हैं ? नाम बताइए ?
प्रश्न 2.2	चारों आश्रम में सबसे महत्वपूर्ण आश्रम कौन सा है ?

1.3 वास्तुशास्त्र की परम्परा (Tradition of Vastu Shastra)

हमारे यहां षास्त्र को एक परम्परा से प्राप्त होते हैं। गुरू–षिष्य परम्परा। इस षास्त्र के आदि गुरू षम्भु हैं, षिव हैं। उनसे एक परम्परा के द्वारा यह ज्ञान विष्वकर्मा जी पास आया, अब वह इसे अपने षिष्य को कह रहे हैं।

इसमें एक बात और स्पष्ट होती हैं कि जिस षास्त्र का वर्णन अब प्रारम्भ हो रहा हे वह एक विषाल परम्परा रखता है, एक गौरवषाली परम्परा रखता है अब षिष्य भी उस परम्परा से जुड़ रहा है, वह भी इस गौरवषाली परम्परा का अंग बन रहा है। उस पर इस परम्परा को आगे बढ़ाने का दायित्व है। अब इस परम्परा के अनुसार ही उसका आचरण व्यवहार आदि भी हो।

इस ष्लोक में वास्तुषास्त्र की परम्परा का उल्लेख किया गया है–

कथयामि मुनिश्रेश्ठ श्रृणुश्वैकाग्रमानराः।
यदुक्तं शम्भुना पूर्व वास्तुशास्त्रं पुरातनम्।।3।।

हे मुनि (मनन करने वाले) श्रेष्ठ (उत्तम), तम एकाग्र (जिसका एक ही अग्र हो) चित्त (ऐसा चित्त जिसका सारा ध्यान एक ही विषय पर केन्द्रित हो) होकर सुनो। यह प्राचीन वास्तुषास्त्र पहले षम्भु (जो स्वयं उत्पन्न हुआ हो, महादेव) ने कहा है।

सबसे पहले तो यह कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ अर्थात् मनन करने वालों में श्रेष्ठ तुम एकाग्र चित्त से, मन से सुनो। यहॉ षास्त्र सुनना, समझने के लिए कहा कि षास्त्र को जानने की उत्सुकता, जिज्ञासा रखने वालो तुम एकाग्र वृत्ति से, मन से इस षास्त्र को सुनो। एकाग्र चित्त से क्यों सुनों ? क्योंकि यह षास्त्र अनेक भेदों से, रहस्यों से युक्त है। यह साधारण षास्त्र नहीं है इनमें अनेक मर्म छुपे हुए है। समरांगण सूत्रधार में भी इसी बात को इस प्रकार कहा है कि –

अप्रज्ञेयं दुरालोकं गूढार्थं बहुविस्तरम्।
प्रज्ञापोतं समारूह्य प्राज्ञो वारतुनिरं(?)तरेत्।।15।।44।।स.सू.

यह वास्तुषास्त्र अप्रज्ञेय, दुरालोक, गूढ़ अर्थ वाला, बहुत ही विस्तारित है। इस वास्तु समुद्र को प्रज्ञारूपी (प्रज्ञा–निर्मल चेतना) जहाज पर चढ़कर, निर्मल चेतना वाला स्थपति (वास्तुषास्त्री) ही पार कर सकता है, समझ सकता है।

इस प्रकार से यह भी कहा गया है कि चेतना एकाग्र हो, निर्मल हो।

वास्तुषास्त्र की परम्परा का आगे वर्णन इस प्रकार है–

पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे।
स विश्वकर्मा जगतः हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम्।।4।।

उसके बाद पराषर ने यह वास्तुषास्त्र बृहद्रथ को कहा, बृहद्रथ में विष्वकर्मा (देवताओं के षिल्पि) को तथा विष्वकर्मा ने यह वास्तुषास्त्र, संसार के हित की इच्छा से अनेक भेद (रहस्य) से भरे हुए इस वास्तुषास्त्र को कहा ।

इस प्रकार से वास्तुषास्त्र (विष्वकर्म प्रकाष) की परम्परा का वर्णन है।

प्रश्न 2.3 **वास्तुशास्त्र के परम्परा का वर्णन कीजिए ?**

प्रश्न 2.4 **वास्तुशास्त्र परम्परा कहाँ से आरम्भ हुई ?**

1.4 ग्रन्थ का उद्देश्य

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।।5।।

विष्वकर्मा जी कहतें हैं कि लोक के भलाई की इच्छा से वास्तुषास्त्र को कहता हूँ।

व्याख्या – यहाँ भी षास्त्र का उद्देष्य स्पष्ट होता है कि लोक कल्याण के लिए, जगत के कल्याण के लिए वास्तुषास्त्र का निर्माण किया गया है। जैसे आयुर्वेद का निमार्ण स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। वैसे ही वास्तु का उद्देष्य यह है कि लोग किस प्रकार के घर मे रहें कि प्रकृति का पोषणकारी ऊर्जा उन्हें प्राप्त हो तथा वे चारों पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकें ।

चार पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

धर्म–अपने स्वधर्म का पालन करना।

अर्थ–स्वधर्म का पालन करते हुए अर्थ (धन) कमाना।

काम–स्वधर्म से कमाए हुए धन से कामनाओं की पूर्ति करना

मोक्ष–मानव जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना। मोक्ष (निष्काम भाव को, साक्षी भाव को प्राप्त करना, उसमें स्थित होना)।

प्रश्न 2.5 **वास्तुशाश्त्र का उद्देश्य बताइए ?**

1.5 वास्तुपुरूष की उत्पत्ति (Origination of Vastu Purush)

कई बार किसी बात को कहने के लिए, अपने यहाँ शास्त्रों में, पुराणों में कथानक या कहानी का सहारा लेते हैं। कई बार किसी बात के गोपनीय तरीके से कहने के लिए भी सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हैं तथा कहानी के माध्यम से उस सत्य को कह भी देते हैं। अभी तीसरे ष्लोक में भी देखा कि यह वास्तुषास्त्र बड़े रहस्यों से भरा है केवल प्रज्ञा के सहारे ही इसे पार किया जा सकता है।

वैदिक वाङ्मय मे देवता के माध्यम से ऊर्जा को व्यक्त किया गया है, देवता षब्द दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्रकाष अर्थात् ऊर्जा है अर्थात् देवता षब्द ऊर्जा का प्रतीक है।

जिस देवता का जो नाम है वह उस प्रकार की ऊर्जा को प्रकट करता है, बताता है।जितने भी देवता हैं, वे सब ऊर्जा ही हैं।देवता के विभिन्न नाम, देवता की ऊर्जा को प्रकट करते हैं, अभिव्यक्त करते हैं। पूरे वैदिक वाङ्मय में जो भी नाम है वही गुण है। जो संज्ञा है वह विषेषण है। जो नाम है वह अपने गुण को प्रकट करता है।

जैसे गणेष का अर्थ गण तथा ईष। ईष का अर्थ है स्वामी, मालिक, पति। तो गणेष का अर्थ हुआ गणों के स्वामी। उमेष का अर्थ हुआ उमा के स्वामी, मालिक, उमा के पति। रमेष का अर्थ हुआ राम का पति आदि, आदि। इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान मे रखने से हम ग्रन्थ मे लिखीं बातों को समझने मे आसानी होगी।

वास्तुषास्त्र मे किसी भूखण्ड या प्लाट पर उत्पन्न ऊर्जा के विषय में अध्ययन करने के लिए उस ऊर्जा की एक पुरूष के समान कल्पना की गई है –

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।।6।।

पहले त्रेतायुग में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ उसने अपने शरीर से सभी भुवन को सुला दिया (वह सारे भुवन में व्याप्त हो गया, आच्छादित हो गया) (अर्थात् वास्तु का क्षेत्र सारा भुवन है)।

व्याख्या – युग चार बताए गए हैं– सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलयुग। इनमें सतयुग के बाद त्रेतायुग में वास्तुपुरूष की उत्पत्ति बताई गई है, अर्थात उससे पहले सतयुग में वास्तुपुरूष नहीं था, सतयुग में सतोगुणी चेतना प्रधान थी। त्रेतायुग में जब रजोगुणी चेतना प्रधान रूप से प्रकट होने लगी तब वास्तुपुरूष का जन्म हुआ तथा वास्तु के विपरीत या गलत निर्माण होने पर दोषों का लगना शुरू हुआ।

इसी प्रकार चेतना के स्तर में गिरावट से वास्तु के दोषों का लगना प्रारम्भ हुआ, का वर्णन हमें समरांगण सूत्रधार के भवनजन्म कथा नामक अध्याय में मिलता है–

समरांगण सूत्रधार, धार के राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुषास्त्र का, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया हे। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देवता व मनुष्य साथ–साथ रहते थे, वे क्षुधा, पिपासा (भूख, प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात मनुष्यों की वृत्ति में, चेतना में ह्रास (गिरावट), होने लगा। उन्हें क्रमषः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व षरीर की अन्य आवष्यकता सताने लगी। तब उन्हें भवन की आवष्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

इससे हमें, यह पता चलता है कि जब तक मनुष्य की चित्त वृत्ति में ह्रास नहीं हुआ, वे देवता के साथ रहते थे, भूख, प्यास व षरीर की अन्य आवष्यकताओं से मुक्त थे। चित्त की वृत्ति के ह्रास, चेतना के स्तर में गिरावट के बाद, उन्हें शारीरिक आवष्यकताऐं सताने लगी एवं षीत, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए भवन की आवष्यकता महसूस हुई और वे भवन बना कर रहने लगे।

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽभूदेक एव च।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः।।7।।सा.सू. 6।।12।।
रूपश्रुतसुखैश्वर्यभाजस्ते निकिला अपि।
सामत्वान्नाभवत् तेशामुत्तमाधमध्यमा।।8।।स.सु. 6।।13।।
न खेटनगरग्रामपुर क्षेत्रखलादिकम्।
न दंशमशकक्रव्याद्भयं वा न ग्रहादि च।।9।।सा.सू. 6।।14।।

न तो खेट, नगर, ग्राम, पुर, क्षेत्र या खल आदि थे। न दंष से (डसने से), न मच्छर से, न ही मांस खाने वालों से कोई भय था। न ही ग्रह आदि का कोई भय था।।14।।

कल्पद्रुमाप्तभोगानांन तेशां प्रभूरप्यभूत।
पुरारिमन् भारते वर्ष तेशां निवसतामिति।।8।।सा.सू. 6।।15।।
जगाम सुबहः कालः सुरैः सार्ध सुरश्रियाम्।
अज्ञाततत्प्रभावानां सहसंवाससंभवा।।16।।18।।सा.सू. 6।।
अथैशामभवद् दैवादवज्ञा क्षिदशान् प्रति।
अपूज्यमानस्ते पूज्या सर्वेऽप्यखिलवेदिनः।।17।।18।।सा.सू. 6।।
परिक्लेशैकमूलानि द्वन्द्वान्यासन् पृथक्पृथक्।
ततः स्वक्लृप्तमर्यादोच्छे दिश्वेश्वजितात्मसु।।29।।8।।सा.सू. 6।।
अविनीतेश्वभाग्येशु सो शालिस्तुशतामगात्।
प्रवृद्धरजसां तेशां सा पुण्यश्लोकता गता।।30।।18।।सा.सू. 6।।

यहॉ पर खेट, नगर, पुर, क्षेत्र, खल आदि की कोई व्यवस्था न थी और यहॉ पर दंषों से, मषकों से अथवा राक्षसों से कोई भय न था। ग्रहों, नक्षत्रों की कोई परवाह नहीं करता था।

प्रवृद्धरजसां तेशां सा पुण्यश्लोकता गता।।30।।

राजस प्रकृति के प्रकोप के कारण, उनकी पुण्यष्लोकता भी चली गई।।30।।

इस प्रकार से हमने देखा कि चेतना क स्तर में गिरावट के बाद ही वास्तु दोषों का लगना प्रारम्भ होता है या लगते हैं अतः अपनी चेतना का स्तर हमेषा ऊँचा होना चाहिए। चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शास्त्र के अनुसार आचरण करना, ध्यान करना, चित्त व मन को निर्मल करना व रखना चाहिए। साक्षी भाव में स्थित रहना, सब कुछ ईष्वर की कृपा है, ईष्वर का प्रसाद है। ईष्वर का कार्य है यह मानकर कार्य करना चाहिए।

देवताओं का ब्रह्मा जी की शरण में जाना –

तं दृष्ट्रा विस्मयं देवा गताः सेन्याभयावृताः।

ततस्ते भयमापन्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः।।7।।

इस प्रकार देखकर देवता आष्चर्य को प्राप्त हुए तथा अन्य के साथ ब्रह्मा जी की षरण में गए।

भूतभावन भूतेश महद्भयमु परिथतम्।

क्व यारयामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामहः।।8।।

हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, भूतों के स्वामी (मालिक), बड़ा भय सामने उपस्थित हुआ है। हे लोक के पितामाह (लोकों को पैदा करने वाला) अब हम कहॉ जाएं?

व्याख्या – पंचमहाभूत के सृष्टि का निर्माण हुआ है, वह व्यक्त हुई है। ये पंचमहाभूतः–आकाष, अग्नि, वायु, जल व पृथ्वी हैं। उनको उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी से देवता इस प्रकार पूछते हैं कि अब हम कहॉ जाएं?

मा कुर्वन्तु भयं देवा विगृह्यैतन्महाबलम्।

निपात्याधोमुखं भूमौ निर्विशक्ङा शविश्यथ।।9।।

ब्रह्मा (सृजन के देवता) ने कहा कि तुम डरो मत, उस महाबली को पकड़कर भूमि पर नीचे की मुख करके गिरा दो तथा षंका से रहित हो जाओ।

ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम्।

विनिक्षिप्तमधो वक्रं (वक्त्रं) स्थितास्तत्रैव ते सुराः।10।

ऐसा सुनकर क्रोध से सन्तप्त देवताओं ने उस महाबली को पकड़ लिया तथा उसे नीचे मुख करके गिरा दिया उस पर स्थित होकर अर्थात् उसके पर बैठ गए।

व्याख्या – यहॉ देवता के लिए सुराः शब्द का प्रयोग किया गया है सुर अर्थात् लय, ताल अर्थात् जो कुछ प्रकृति (नेचर, स्वभाव) के साथ लय मे है, ताल मे है, वह देवता है।

कृष्णपक्षे तृतीयायां मासि भाद्रपदे तथा।।11।।

भाद्रपद महीने के कृष्ण पक्ष की तीज स्थित को वास्तु पुरूष का जन्म हुआ।

शनिवारे भवेज्जन्म नक्षत्रे कृतिकासु च।

योगस्तस्य व्यतीपातरू करणंविष्टिसंज्ञकम्।।12।।

षनिवार, कृतिका नक्षत्र, व्यतीपात(बड़ा उपद्रव) योग तथा विष्टि करण मे वास्तु पुरूष का जन्म हुआ।

पंचांग के 5 अंग होते हैं :– तिथि, वार, नक्षत्र, योग व करण। इनका प्रारम्भिक परिचय प्राप्त करें–

तिथि अर्थात् हिन्दी महीने की तारीख 1 से 15 (पूर्णिमा) तथा 16 से 30 (अमावस्या) तक।

वार 7 होते हैं– रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार तथा षनिवार।

करण–तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं, करण 11 होते हैं, चर व स्थिर।11 करण के 11 स्वामी होते हैं। ये करण अपने स्वामी के नाम के अनुसार फल देते हैं।

क्रमांक	नाम	संज्ञा	स्वामी	फल
1	बव	चर	इंद्र	षुभ
2	बालव	चर	ब्रह्मा	षुभ
3	कौलव	चर	मित्र	षुभ
4	तैतिल	चर	सूर्य	षुभ
5	गर	चर	पृथ्वी	षुभ
6	वणिज	चर	लक्ष्मी	षुभ
7	विष्टि	चर	यम	अषुभ
8	शकुनि	स्थिर	कलि	अषुभ
9	चतुष्पद	स्थिर	वृष	षुभ
10	नाग	स्थिर	नाग	षुभ
11	किंस्तुघ्न	स्थिर	वायु	षुभ

पंचांग के यह पांच अंग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग व करण) किसी भी मुहूर्त (कौन सा कार्य

नक्षत्र

(1)अश्विनी	(10)मघा	(19)मूल
(2)भरणी	(11)पूर्वा फाल्गुनी	(20)पूर्वाषाढ़ा
(3)कृतिका	(12)उत्तरा फाल्गुनी	(21)उत्तराषाढ़ा
(4)रोहिणी	(13)हस्त	(22)श्रवण
(5)मृगशिरा	(14)चित्रा	(23)घनिष्ठा
(6)आर्द्रा	(15)स्वाति	(24)षतभिषा
(7)पुनर्वसु	(16)विषाखा	(25)पूर्वाभाद्रपद
(8)पुष्य	(17)अनुराधा	(26)उत्तराभाद्रपद
(9)आश्लेषा	(18)ज्येष्ठा	(27)रेवती

योग सत्ताईश होते हैं :–

(1)विष्कम्भ	(10)गण्ड	(19)परिघ
(2)प्रीति	(11)वृद्धि	(20)षिव
(3)आयुष्मान	(12)ध्रुव	(21)सिद्ध
(4)सौभाग्य	(13)व्याघात	(22)साध्य
(5)शोभन	(14)हर्षण	(23)षुभ
(6)अतिगण्ड	(15)वज्र	(24)शुक्ल
(7)सुकर्मा	(16)सिद्धि	(25)ब्रह्म
(8)धृति	(17)व्यतीपात	(26)ऐन्द्र

(9)शूल (18)वरीयान् (27)वैधृति

कब प्रारम्भ करना?) ज्ञात करने के आधार बिन्दु हैं। जैसे मुहूर्त में कार्य प्रारम्भ करेंगें, वैसा ही फल मिलेगा।

भद्रान्तरे भवेज्जन्म कुलिके तु तथैव च।

क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्माणं रामपद्यत।।13।।

उसकी (वास्तु पुरूष की) उत्पत्ति भद्रा के बीच मे, कुलिक (कारीगर) मुहूर्त मे हुई। बहुत अधिक शब्द करता हुआ, ब्रह्मा के सामने उपस्थित हुआ।

चराचरमिदं सर्वं त्वया सृष्टं जगत्प्रभो।

विनापराधेन च मां पीडयन्ति सुराभृशम्।।14।।

उनसे कहा कि हे प्रभु, (ऐष्वर्य वान) आपने, यह सारे चर (चलने वाला) व अचर (स्थिर) जगत् की रचना की है, किन्तु बिना अपराध के ये देवता गण मुझे कष्ट देते हैं।

प्रश्न 2.6 युग कितने प्रकार के होते हैं :–

(अ) एक (आ) चार (इ) पांच (ई) सात

प्रश्न 2.7 वास्तु पुरूष की उत्पत्ति किस युग मे हुई ?

प्रश्न 2.8 पंचांग के कितने अंग होते हैं :–

(अ) तीन (आ) नौ (इ) पांच (ई) सात

प्रश्न 2.9 तिथियॉ कितनी होती हैं ?

(अ) 13 (आ) 15 (इ) 7 (ई) 45

प्रश्न 2.10 नक्षत्र कितने होते हैं ?

(अ) 7 (आ) 23 (इ) 27 (ई) 45

प्रश्न 2.11 हिन्दी मास कितने होते हैं ? नाम लिखिए ?

प्रश्न 2.12 नक्षत्र कितने होते हैं ? अश्विनी नक्षत्र से पॉच नक्षत्रों के नाम लिखिए ?

1.6 वास्तुपूजन कब करें ?

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोक पितामहः।

ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा।।15।।

प्रासादे च प्रपायां च जलोद्यान तथैव च।

यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तुनर प्रभो।।16।।

आश्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे।

वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति।।17।।

लोकपितामह ब्रह्मा ने उसके वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि जो कोई ग्राम या नगर या किला या बन्दरगाह, महल और प्याऊ, जलाषय व बगीचा के बनवाते समय षुरूआत में, हे

वास्तुपुरूष जो कोई तुझे मोह के कारण न पूजे, वह दरिद्रता को तथा मृत्यु को प्राप्त होगा तथा उसे हर कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ेगा एवं भविष्य में तेरा आहार बनेगा।

व्याख्या – यहॉ हमें स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी भी नये निर्माण कार्य को प्रारम्भ करने के पहले, भलीभॉति विचार करके कि, वास्तु को किस प्रकार नियमों के अनुसार बसाना चाहिए ? किस दिषा में क्या निर्माण करना चाहिए ? कितनी जगह, किस दिषा में खाली जगह छोड़ना चाहिए ? आदि अर्थात् सारी योजना (प्लानिंग) न करने पर वह दोषकारक होता है।

वास्तुपुरूष षरीर पर 45 देवता विराजमान है। ये 45 देवता, 45 अलग–अलग ऊर्जा को बताते है, कि वास्तु के किस भाग या दिषा में किस प्रकार की ऊर्जा है। उस देवता या ऊर्जा के अनुसार वहॉ निर्माण करना चाहिए।

एक और षब्द ष्लोक में आया है जिसकी व्याख्या हो बहुत बड़ी हो जाएगी, परन्तु सांकेतिक रूप से षब्द तो कह दें, कहा है कि हे वास्तुपुरूष जो व्यक्ति तुझे मोह से न पूजे। तो षब्द आया है मोह। यह जो मोह षब्द है उसका अर्थ जब षब्द कोष में देखते हें तो पाते हैं कि मोह का अर्थ है चेतना की हानि, निःसंज्ञा, बेहोषी आदि–आदि। मोह जो है वह सर्वदा अनिष्टकारक है। श्रीमद्भगवतगीता में प्रारम्भ ही अर्जुन के मोह संबंधित प्रष्न से होती है। अर्जुन कहता है कि

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।7।।2।।

कायरतारूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला (तथा) धर्म (स्वधर्म) के विषय में मोहित चित्त हुआ (मैं) आपसे पूंछता हूॅ (कि) जो निष्चित कल्याणकारक (साधन) हो, वह मेरे लिए कहिए, (क्योंकि) मैं आपका षिष्य हूॅ, आपकी शरण में हूॅ, मुझको षिक्षा दीजिए। तो पूरी गीता की षुरूवात इस प्रष्न से होती है कि अर्जुन मोहित है, भगवान श्री कृष्ण बराबर उपदेष देते रहते हैं, हर दृष्टिकोण से पक्ष को रखते हैं, बताते हैं, समझाते हैं, पूरी गीता सुनाने के पष्चात भगवान अर्जुन से पूंछते हैं कि हां भाई अर्जुन अब बताओ–

कच्चिदेतच्छुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनश्टस्ते धनज्जय।।72।।18।।

हे! पार्थ क्या तूने एकाग्रचित से इसका श्रवण किया (सुना) तथा हे! धनज्जय क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हो गया।

तब अर्जुन कहता है कि

नष्टो मोहः स्मृर्तिलब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।73।।18।।

हे! अच्युत आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया तथा मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, संषयरहित होकर स्थित हूॅ , अपकी आज्ञा का पालन करूॅगा।

इस प्रकार से हम देखते हैंकि पूरी गीता का फल मोह नाष है। सारे फसाद की, झंझट की जड यह मोह है। यह जो मोह है इसका नाष होना अत्यन्त–अत्यन्त आवष्यक है। यहां वास्तु में भी ब्रह्मा जी ने वास्तुपुरूष से कहा कि हे वास्तुपुरूष जो व्यक्ति तुझे मोह से न पूजे वह भविष्य में नाष को प्राप्त होगा।

इत्युक्तवान्तर्दधे सद्यो देवो ब्रह्मविदांवरः।
वास्तुपूजा प्रकुर्वीत गृहारम्भ–प्रवेशने।।18।।

इतना कहकर ब्रह्मा बिदा हो गए। इसलिए घर बनवाना शुरू करते समय तथा प्रवेष के समय वास्तुपूजा करना चाहिए।

द्वाररगिवर्त्तने चैव त्रिविधे च प्रवेशने।
प्रतिवर्शज्ज यज्ञादौ तथा पुत्रस्य जन्मनि।।19।।
व्रतबन्धे विवाहे च तथैव च महोत्सवे।
जीर्णो द्वारे सस्यन्मासे चैव विशेषतः।।20।।

दरवाजे (चौखट) लगाते समय, तीन प्रकार के प्रवेश में, अपूर्व प्रवेषः (नये घर में), सपूर्व प्रवेषः (यात्रा से लौटने के बाद) तथा द्वन्द्वाभय प्रवेषः (पुराने घर को नया बनवाने पर), प्रति वर्ष, यज्ञ में, पुत्र के जन्म दिन पर, जनेऊ संस्कार पर, महोत्सव के समय, जीर्णोद्धार तथा अनाज को इकट्ठा के समय पर वास्तुपूजन को करना चाहिए।

व्याख्या – वास्तुपूजन करने से पूरा घर सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। जैसे हम प्रति वर्ष दीपावली पर घर की साफ–सफाई करते हैं, रंग करते हैं, कपड़ों को धूप आदि दिखाते हैं, अन्य प्रकार से घर को साफ करते हैं, तमाम कूड़ा–करकट, अटाला आदि व्यर्थ सामान घर से निकाल कर बाहर करते हैं, तो इस प्रकार वास्तुशान्ति करवाने से घर सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। ऐसा कम से कम वर्ष में एक बार अवष्य करना चाहिए।

प्रश्न 2.13 वास्तुपूजन कब–कब करना चाहिए ?

1.7 वास्तुदोष लक्षण

वज्राग्निदूशिते भग्ने सर्पचाण्डालवेष्टिते।
उलूकवासिते सप्तरात्रौ काकाधिवासिते।।21।।
मृगाधिवासते रात्रौ गोमार्जाराग्निनदिते।
वारणाश्वादिविरूते स्त्रीणां युद्धाग्निदूशिते।।22।।
कपोतकगृहावासे मधूनां निलये तथा।

जो घर बिजली गिरने से दूषित हो, भग्न (टूटा–फूटा) हो, जो घर सॉप व चाण्डाल से घिरा हो, जिसमें उल्लू रहते हों, जिस घर में सात रात्रि से कौआ आदि रहते हों। जिस घर में हिरण हो, जिस घर में पालतू जानवर गाय, बिल्ली रात्रि में अधिक आवाज करें (असामान्य रूप से चिल्लाए) हाथी व घोड़े आदि विषेष प्रकार से चिल्लाएं। जो घर, महिलाओं के झगड़े से दूषित हो। जिस घर में कबूतर रहते हों, जिस घर में मधुमक्खियों का छत्ता हो और जो अन्य प्रकार के उत्पात से दूषित हो।

व्याख्या– यहॉ जिस घर में वास्तुदोष होगा, उसमें किस प्रकार के लक्षण होते हें, इसका वर्णन किया गया है। इससे हमें वास्तुदोष से दूषित घर का पता लगाने में सहायता मिलती है।

जैसे कोई रोगी, किसी चिकित्सक (डाक्टर) के पास जब जाता है तो डॉक्टर, उससे बीमारी के लक्षण पूछता है, उसके आधार पर यह निर्धारित करता है कि उसे कौन सी बीमारी है। ठीक इसी प्रकार, इन वास्तु दोष के लक्षण के माध्यम से किसी स्थान पर वास्तुदोष हैं, यह पता चलता (ज्ञात होता) है।

प्रश्न 2.14 वास्तुदोष के लक्षण लिखिए ?

1.8 वास्तुदोष दूर करने के उपाय

अन्यैश्चैव महोत्पातैर्दूषिते शान्तिमाचरेत् ।।23।।

इस प्रकार के दोष व अन्य बड़े उत्पाद से दूषित घर में वास्तुषान्ति (पूजा) को करें।

व्याख्या– हमारे यहॉ शास्त्र में एक परम्परा है कि सबसे महत्वपूर्ण बात सबसे पहले ही कह देते हैं। चाहे पतंजलि योग सूत्र हो तो पहले है श्लोक में कह दिया योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। चित्त की वृतियों का रूक जाना योग है। श्रीमद्भगवतगीता के दूसरे ही अध्याय में ब्रह्म ज्ञान का उपदेष दे दिया है।

इसी प्रकार यहॉ विष्वकर्मा प्रकाष में सबसे पहले वास्तुदोष के क्या लक्षण हैं ? यह बताने के तुरन्त बाद ही दोष दूर करने का उपाय दे दिया, कह दिया कि ऐसे घर में वास्तुषान्ति को करें। पूरे घर को सकारात्मक ऊर्जा से भर दें, चार्ज करें। इस बात को हम अध्याय पॉच में देखेंगे कि किस प्रकार घर को विभिन्न पदार्थों का हवन कर, सकारात्मक ऊर्जा से भरा जाता है।

मानसार और वृहद संहिता, विष्वकर्मा पुराण, अग्निपुराण, मयमर्त्य ग्रन्थों में वास्तु दोष के असंख्य सरलतम निदान दिए गए हैं।

वास्तुपूजन के समय विभिन्न देवता का पूजन उनके मन्त्रों के साथ, अलग–अलग पदार्थ से जब हवन करते हैं तो उससे सारा वातावरण शुद्ध व पवित्र होता है, सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। गृह स्वामी पूर्णरूप से स्वस्थ्य एवं खुषहाल परिवार के साथ जीवन का निर्वाहन करके लगता है।

प्रश्न 2.15 वास्तुदोष दूर करने का उपाय लिखिए ?

1.9 सारांश

विष्वकर्मा–प्रकाष, विष्वकर्मा जी द्वारा लिखा गया वास्तुषास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है, इसमें सबसे पलहे मंगलाचरण, उसके पष्चात गृहस्थ आश्रम की महिमा बताई है। वास्तुषास्त्र षिवजी से प्रारम्भ होकर परम्परा के रूप में हमें प्राप्त होता है। वास्तुषास्त्र की उत्पत्ति त्रेतायुग में हुई। प्रत्येक निर्माण कार्य को प्रारम्भ करने से पहले वास्तु के अनुसार योजना (प्लानिंग) करना चाहिए। निर्माण प्रारम्भ करने से लेकर, सभी महत्वपूर्ण कार्य जैसे दरवाजा स्थापित करना व गृहप्रवेष के समय वास्तुषास्त्र करना चाहिए। वर्ष में कम से कम एक बार वास्तुपूजन अवष्य करना चाहिए। किसी घर या स्थान पर वास्तुदोष है, इसका ज्ञान हमें वास्तुदोष के लक्षण के माध्यम से होता हैं।

अध्याय–3

महर्षि आयुर्वेद

(Maharishi Ayurveda)

''आयुर्वेदामृतनां''

अमरता के अभिलाषियों के लिए आयुर्वेद अमृत के समान है।

परिचय (Introduction)

इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव है आध्यात्मिक धाणराओं के अनुसार हमें मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों के पष्चात मिला है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन का सर्वोपर उद्देष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है इन चारो को पाना का वास्तविक साधन पूर्ण स्वास्थ्य है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूल मुत्तमम्।

इस प्रकार अस्वस्थ मनुष्य न तो धर्म का यथावत पालन कर सकता है न धन कमा सकता है काम का आनन्द भोगना उसके लिए सम्भव नहीं, तो मोक्ष की तो बात सोचना कल्पना मात्र है। अतः जीवन की सार्थकता और सुख प्राप्ति में स्वास्थ्य अर्थात तन्दुरूस्ती का सबसे वड़ा उपयोग है कहावत यह भी है मनुष्य के सात सुखो में ''पहला सुख निरोगी काया'' अर्थात प्रथम सुख स्वस्थ्य षरीर को ही कहा है ''एक तन्दुरूस्ती हजार नियामत'' अर्थात स्वास्थ्य एक तरफ और संसार के हजारों सुख एक तरफ कहे गये हैं षरीर से हम दुनियाभर के कार्य कर सकते हैं कहा भी गया है

''शरीरमाद्यं धर्म खलु साधनम्''

अर्थात षरीर ही सब साधनों का माध्यम है विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, कीर्ति, सम्मान आदि एव तरह के सुख साधन स्वस्थ्य षरीर से संभव है। तन्दुरूस्ती भिखारी करोड़पति रोगी से अधिक सुखी रहता है। इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र में चाहे षारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक हो। षरीर का स्वस्थ्य रहना अत्यन्त आवष्यक है। पूरे जीवन में सफलतापूर्वक सांसारिक सुख भोगने के लिये विद्धता, नेतृत्व, राजकार्य, व्यवसाय, नौकरी, समाज और देष की सेवा अादि सबके लिए सबसे पहली और अनिवार्य आवष्यकता तंदुरूस्ती है। जीवन का सच्चा सार ही स्वास्थ्य है।

वैदिक वाड्.मय में आयुर्वेद एवं उनका परिचय

वैदिक वाड्.मय के अर्न्तगत आयुर्वेद संहिता के छः भाग हैं।

आयुर्वेद पूरे षरीर में व्यवस्था को बनाए रखता है, आयुर्वेद संहिता के छः भाग निम्न प्रकार हैं:–

1. चरक संहिता (ऋषि)

2. सुश्रुत संहिता (देवता)
3. बाग्भट्ट संहिता (छन्द)
4. माधव निदान संहिता (ऋषि)
5. षारग्र्डधर संहिता (देवता)
6. भाव प्रकाष संहिता (छन्द)

वैदिक वाड्.मय के अर्न्तगत आयुर्वेद का परिचय निम्न प्रकार हैः–

1. **चरक संहिता (ऋषि)**:– चेतना का गुण संतुलन

   महर्षि चरक ने आयुर्वेद के इतिहास में बहुत योगदान दिया है, इनके बिना आयुर्वेद का अध्ययन करना कठिन है। चरक संहिता के आठ स्थानों के ष्लोकों का पाठ करने से पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। जिससे इस क्षेत्र की चेतना बलवती होती है।

   एक प्रकार का स्पन्दन चरक संहिता नाम के अन्तर्गत आता है। चरक संहिता सम्बन्धी चेतना के स्पन्दन षरीर में उपलब्ध हैं, चरक संहिता के स्पन्दनों से षरीर के जिस भाग की रचना हुई है उसको अंग्रेजी में 'माजोडर्मल टिष्यूज एण्ड आर्गन्स' कहते हैं। चरक पूर्ण विद्या है, ब्रह्म विद्या है, आत्मा की पूर्ण जाग्रत में मन का वृतियों का समुच्चय क्षेत्र है। चरक संहिता ऋषि तत्व प्रधान संहिता है।

2. **सुश्रुत संहिता (देवता)**:– चेतना का गुण–दिव्यानुभूति

   एक प्रकार का स्पन्दन सुश्रुत संहिता नाम के अन्तर्गत आता है। सुश्रुत संहिता संबंधी चेतना के स्पन्दन षरीर में उपलब्ध हैं। सुश्रुत संहिता के स्पन्दनों से षरीर के जिस भाग की रचना हुई है। उसको अंग्रेजी में 'एक्टो डर्मल टिष्यूज एण्ड आर्गन्स' कहते हैं।

   सुश्रुत संहिता की त्रुटि से स्मृति को जाग्रत करके पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने की सामर्थ्य जाग्रत होती है, सुश्रुत आत्मा का वह गुण है जो अपने स्वरूप में अपौरूषेय अनुपूर्वी प्रवाह को श्रवण करता है। स्पष्ट और दिव्य श्रवण की अनुभूति ही सुश्रुत है।

3. **वाग्भट्ट संहिता (छन्द)**:– चेतना का गुण–संचार एवं वाग्सिता।

   एक प्रकार का स्पन्दन वाग्भट्ट संहिता संबंधी चेतना का स्पन्दन षरीर में उपलब्ध है। वाग्भट्ट संहिता के स्पन्दनों से षरीर के जिस भाग की रचना हुई है, उसको अंग्रेजी में 'एन्डोडर्मल टिष्यूज एण्ड आर्गन्स' कहते हैं।

   वाग्भट्ट संहिता का पाठ करने से इस क्षेत्र की चेतना जाग्रह होकर बलवती होती है। वाक का अर्थ है 'वाणी' और भट्ट का अर्थ है 'पण्डित' अर्थात पूर्ण ज्ञाता वाणी के क्षेत्र का पूर्ण प्रषासक। वाग्भट्ट संहिता छन्द प्रधान संहिता है।

4. **माधव निदान संहिता (ऋषि)**:– गुण–निरूपण।

   एक प्रकार का स्पन्दन 'माधव निदान संहिता' नाम के अन्तर्गत आता है। माधव निदान संहिता सम्बन्धी चेतना के स्पन्दन चेतना में उपलब्ध हैं। माधव निदान संहिता के स्पन्दनों से षरीर के जिस भाग की रचना हुई है, उसको अंग्रेजी में 'सेम मैम्ब्रेन' कहते हैं।

   वैदिक वाड्.मय में निरूपण का गुण माधव निदान संहिता में है, इसका पाठ आत्म चेतना में निरूपण के गुण को जाग्रत करता है। माधव निदान संहिता ऋषि प्रधान संहिता है।

5. **शारग्र्डधर संहिता (देवता)**:– चेतना का गुण – संस्लेषणात्मकता।

एक प्रकार का स्पन्दन 'षारग्र्डधर संहिता' नाम के अन्तर्गत आता है। षारग्र्डधर संहिता सम्बन्धी चेतना के स्पन्दनों से षरीर के जिस भाग की रचना हई है, उसको अंग्रेजी में 'साइटो प्लाज्म एण्ड साइटो स्केलेटन' कहते हैं। षारग्र्डधर संहिता का पाठ करने से इस क्षेत्र की चेतना जाग्रत होकर बलवती होती है। षारग्र्डधर संहिता देवता प्रधान संहिता है।

6. **गाव प्रकाश संहिता (छन्द)**:– गुण – वोधमयता

एक प्रकार का स्पन्दन 'भाव प्रकाष संहिता' नाम के अन्तर्गत आता है। भाव प्रकाष संहिता सम्बन्धी चेतना के स्पन्दन षरीर में उपलब्ध है। भाव प्रकाष संहिता के स्पन्दनों से षरीर के किस भाग की रचना हुई है। उसको अंग्रेजी में 'सेल न्यूक्लियज' कहते हैं।

भाव प्रकाष संहिता का पाठ करने से इस क्षेत्र की चेतना जाग्रत होकर बलवती होती है। भाव प्रकाष संहिता छन्द प्रधान संहिता है।

प्रश्न 3.1 सेल मैम्ब्रेन नामक स्पंदन किस वैदिक वाड्.मय से संबंध रखता है ?

प्रश्न 3.2 भाव प्रकाश संहिता के स्पंदन का शरीर के किस भाग से संबंध हैं एवं इसकी चेतना का गुण लिखिए ?

आयुर्वेद एवं स्वास्थ्य

जीवन की महत्वपूर्ण कुंजी स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए आयुर्वेदिक स्वास्थ्य की रचना हुई। आयुर्वेद के मनीषियों ने स्वस्थ्य व्यक्ति की विस्तृत परिभाषा दी है।

स्वास्थ्य की परिभाषा

''समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः

प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ्य इत्यभिधीयते'' (चरक)

अर्थात जिस व्यक्ति के दोष (वात, पित्त, कफ), अग्नि (जठराग्नि), धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, षुक्र), मल (मूत्र, पुरीष, स्वेद) इत्यादि समावस्था में हों, इसके अलावा, इन्द्रिय, व मन प्रसन्न हों, वही स्वस्थ्य व्यक्ति कहलाता है। आयुर्वेद के सिद्धांत इस परिभाषा को परिपूर्ण करते है।

अतः स्वास्थ्य एवं दीर्घआयु की कामना करने वाले प्रत्येक मानव को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करना और उसके उद्देष्यों का पालन करना चाहिए, कहा भी गया है–

''आयुः कामयमानेन धमार्थ सुखसाधनम्

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः'' (वाग्यभट्ट)

संसार के सभी अभिष्ट कार्यों – धर्म, अर्थ, काम, माक्ष की सिद्धि स्वस्थ्य षरीर और दीर्घ आयु से हो सकती है, अतः दीर्घ आयु एवं स्वास्थ्य की कामना करने वाले प्रत्येक मानव को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करना और उसके उपदेषों का पालन करना चाहिए।

ष्षरीर इन्द्रियॉ मन और चेतना, धातु, आत्मा इन चारों के संयोग और अर्थात जीवन को ही आयु और इस आयु से संबंधी समस्त ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद अनादि है क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ से

ही जीवन और स्वास्थ्य रक्षार्थं आयु, जल, अन्न आदि पदार्थों और इनके समुचित उपयोग की आवष्यकता को अनुभूति के साथ ही विविध साधनाओं और उपायों का अनवेषण एवं उपयोग प्रारंभ हुआ।

स्वस्थ्य रहने के महत्वपूर्ण स्वर्णिम सिद्धांतों का वर्णन आयुर्वेद में किया गया है जैसे दिनचर्या, ऋतुचर्या, उपस्तंभ, पंचकर्म आदि निहित हैं।

आयुर्वेद परिभाषा

आयुः कामयमानेन धर्मार्थं सुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेष विधेयः परमादरः।। (वाग्भट्ट)

आयुर्वेद परिचयः–

आयुर्वेद दो षब्दों से मिलकर बना है आयु+वेद 'आयुर्वेदयति बोधयति इति आयुर्वेदा' वह षास्त्र जो आयु का बोध कराता हे अर्थात् ज्ञान कराता हे आयुर्वेद कहलाता है –5

आयुः–

यहां आयु से तात्पर्य उम्र से नहीं है यहां आयु का तात्पर्य व्यक्ति के जीवन से है, आयुर्वेद में ऐज के लिए वय षब्द का प्रयोग होता है –6

आयु की परिभाषाः–

'शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोगो धारिजीवितम्'

आयु क्या है ? आयुर्वेद में इसकी परिभाषा उपरोक्तानुसार दी गई है जब षरीर इन्द्रिय, मन, आत्मा का संयोग होता है वही आयु होती है किसी एक का भी न होना आयु को पूर्ण नहीं करता है, अर्थात षरीर आत्मा मन एवं इन्द्रियों का सभी का सम्यक संयोग ही आयु कहलाती है –7

चरक संहिता में कहा है :–

हिताहितम् सुखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मनंच तच्च यत्रोक्त्मायुर्वेदाः स उच्यते।।

जिस ग्रन्थ में 1. हित आयु 2. अहित आयु 3. सुख आयु 4. दुःख आयु इन चार प्रकार की आयु के लिए हित (पथ्य) अहित (अपथ्य) आयु का मान (प्रमाण और अप्रमाण) और आयु का स्वरूप वताया गया हो उसे आयुर्वेद षास्त्र कहा जाता है –8

सुख आयु एवं दुःख आयु व्यक्ति के अपने षारीरिक सुख एवं दुःख की परिणति होती है जबकि हित एवं अहित आय किसी अन्य किसी दूसरे व्यक्ति के साथ अच्छा व्यवहार करना या गलत व्यवहार करना होती है। किसी व्यक्ति को दुःख पहुँचासना अहित आयु एवं सुख पहुँचाना हित आयु के अन्तर्गत आता है। अर्थात आयुर्वेद में स्वयं के सुख–दुःख के साथ–साथ परहित एवं परअहित का भी समावेष हाता है।

षरीर इन्द्रियॉं, मन और चेतना, धातु, आत्मा इन चारों के संयोग अर्थात जीवन को ही आयु और इस आयु सम्बन्धी समस्त ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद अनादि है क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ही जीवन और स्वास्थ्य रक्षार्थ आयु, जल, अन्न आदि पदार्थों और उनके समुचित उपयोग की आवष्यकता की अनुभूति के साथ ही विविध साधनों और उपायों का अन्वेषण एवं उपयोग प्रारम्भ हुआ–2

भविष्य में होने वाली सन्तति में उत्तरोत्तर आयु एवं बुद्धि का अल्पता का ध्यान कर समुचे आयुर्वेद को कायचिकित्सा, षल्यतन्त्र, षाल्यक्य, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, भूतविद्या, रसायन और वाजीकरण इन आठ अंगों में विभक्तय किया गया है।

आयुर्वेद अमृत के तुल्य है जिस प्रकार अमृत से सब रोगों की षान्ति होती है और षरीर अजर अमर बन जाता है उसी प्रकार इस आयुर्वेद से सब रेाग नष्ट होते हैं और षरीर अजर व अमर बन जाता है, इसी कारण चरक ने कहा, **'आयुर्वेदोअमृतानाम्'–4**

आयुर्वेद की परम्पराः–

सर्वप्रथम देवताओं में ब्रह्मा से प्रजापति उनसे अष्विनी कुमारों और उनसे इन्द्र ने आयुर्वेद का अध्ययन किया तथा उनसे अत्रेय भारद्वाज, धन्वन्तरि एवं उनके षिष्यों ने आयुर्वेद का अध्ययन कर मानव समाज में उसका प्रचार किया।

इसका अवतरण अनादि एवं षाष्वत है। आयुर्वेदीय षास्त्रों के अनुसार आयुर्वेद का अवतरण इस प्रकार मिलता है। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अमृत रूपी आयुर्वेद को पूर्णरूप से अर्थ सहित जाना। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अमृत रूपी आयुर्वेद को सम्पूर्ण रूप में अर्थ सहित जाना ब्रह्मा ने इसका उपदेष दक्षप्रजापति को दिया दक्ष ने अष्विनी को उपदेष दिया। अष्विनी कुमार ने इन्द्र को सिखाया इसके पष्चात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में विघ्न कारक रोगों से जब मनुष्य पीड़ित होने लगे जब धन्वन्तरि भारद्वाज, निमि, काष्यप्, आलमा, आलम्वयन् आदि महर्षि तथा महात्मा पुर्नवसु को आगे करके देवताओं के नायक इन्द्र की शरण में पहुँचे इन महर्षियों को देखकर इन्द्र ने षास्त्र के अनुसार आयु (जीवन) के पालन (रक्षण) करने के ज्ञान का उपदेष दिया

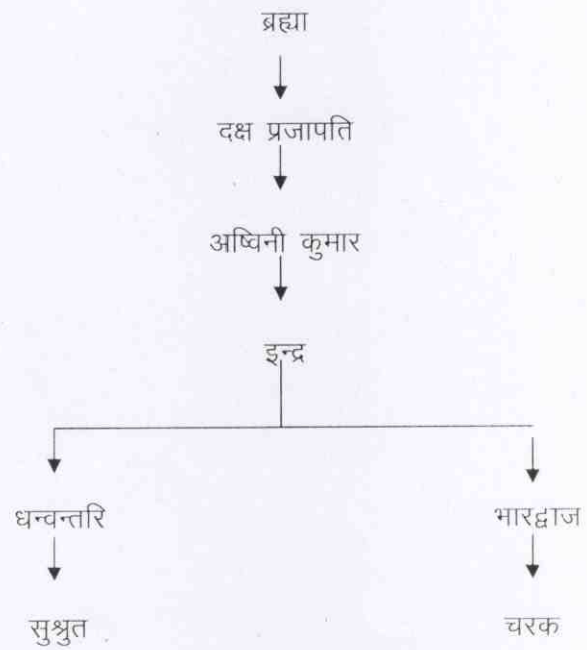

अष्टाँग आयुर्वेदः–

आयुर्वेद के आठ अंग माने गये हैं, इन आठों अंगों में सम्पूर्ण चिकित्सा का समावेष होता है।

कायवालग्रहोध्वग्डिषल्य दंष्टाजरावुधान

1. कायचिकित्सा 2. बालचिकित्सा 3. ग्रहचिकित्सा 4. ऊध्वॉग चिकित्सा
5. षल्यचिकित्सा 6. दंष्ट्राचिकित्सा 7. जराचिकित्सा 8.व्रषचिकित्सा (बाजीकरण)

उद्देश्य(अवतरण):–

जिस षास्त्र के अनुसार आयु प्राप्त की जाती है उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद में निरोगी होकर जीवन व्यतीत करना ही धर्म माना है, इन्हीं दो उद्देष्यों से आयुर्वेद का अवतरण हुआ है –12

'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्। आतुरस्य विकार प्रशमनं च' –13

आयुर्वेद के दो उद्देष्य हैं:–

(1) स्वस्थ्य व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना।

(2) आतुर के विकार का प्रषमन करना।

इन दोनों उद्देष्यों में प्रथम उद्देष्य ही प्रमुख है, यदि प्रथम उद्देष्य पर ही पूर्ण रूप से अलम किया जाए तो अस्वस्थ्य(आतुर) ही नहीं होगा अतः दूसरे उद्देष्य की आवष्यकता हीं नहीं होगी। –14

महर्षि आयुर्वेद का उद्देश्यः–

आयुर्वेद का मुख्य उद्देष्य स्वस्थ्य व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना है इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए नियम एवं सिद्धांत बताये गये हैं, जिसे महर्षि आयुर्वेद वैदिक स्वास्थ्य विधान का सिद्धांत कहा जाता है जो इस प्रकार है :–

1. संतुलित आहार 2. दिनचर्या 3. रात्रिचर्या 4. ऋतुचर्या 5. धारणीय–अधारणीय वेग
6. सद्वृत पालन। –17

प्रश्न 3.3 आयुर्वेद क्या है ?

प्रश्न 3.4 आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा दीजिए ?

प्रश्न 3.5 आयुर्वेद की परंपरा पर प्रकाश डालियें ?

प्रश्न 3.6 आयुर्वेद चिकित्सा को कितने भागों में बांटा गया है ?

त्रिदोष (Tridosh)

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान पन्द्रह में स्पष्ट षब्दों में वर्णन मिलता हैः–

''दोषधातुमलंमूलं हि शरीरम्'' (सुश्रुत संहिता)

अर्थात दोष, धातु, मल षरीर के मूल है यह तीनों दोष षरीर को स्थिर रखते हैं जिस प्रकार वृक्ष की स्थिति और प्रलय के लिए उसका मूल ही प्रधान होता है, जिस प्रकार तीन स्तंभों से भवन धारण होता है। जिस प्रकार तराजू तिकन्टी बनाई जाती है परन्तु इस तिकन्टी से एक भी टांग निकलने से तराजू नहीं रहती इसी प्रकार यह षरीर भी इन तीन वात, कफ, पित्त से टिका हुआ है। यह दोष ही षरीर को स्थिर रखते हैं।

ष्षरीर के दोष तीन हैं, वात, पित्त, कफ जब यह दोष समावस्था में (प्राकृतिक अवस्था में) रहते हैं तब षरीर के उपकारक होते हैं लेकिन जब यह विकृति को प्राप्त होते हैं (विषम अवस्था) तो अवष्य ही षरीर को नाना प्रकार के रोगों से दूषित करते हैं। जब दोष अपने आषयों से संचित होकर वृद्धि को प्राप्त हो चुके होते हैं तो इस अवस्था में इन्हें शमन करने का प्रयत्न न किया जाए तो यह बढ़कर अपने–अपने आषयों से निकलने का प्रयास करते हैं इन्हीं को आयुर्वेद में दोषों की प्रकोप अवस्था कहलाती है। यहीं से रोग उत्पन्न होते हैं।

वात, पित्त, कफ इन धातुओं के गुण, कर्म एवं स्थान विभिन्न प्रकार हैंः–

वात

स्वरूप– चरक संहिता में वायु का स्वरूप बताते हुए लिखा है कि ''रूक्षता षैत्य–लाघव– विषदता'' गति और अमूर्तता वायु का स्वरूप है। वास्तव में गति अर्थ विषिष्ट (वा) धातु से वायु बनता है।

गुणः– वायु के गुण बताते हुए षास्त्रों में निम्न वर्णन आया है– ''रूक्षता–षैत्य–लघु–सूक्ष्म– चल विषद खर'' ये वायु के गुण हैं। रूक्ष गुण वायु में जल की अल्पता है। षीत गुणका अर्थ है शीत पदार्थों से आयु में वृद्धि। वायु भूत से लघुता होती है सूक्ष्म का अर्थ है कि षरीर के सूक्ष्म अति सूक्ष्म अवयवों में पहूंचने की षक्ति रखता है चलना और चलाना वायु का स्भाव है विषरता का अर्थ है वायु में जल का न होना। अतः वायु को विषद गुण वाला कहा है। खर में अवयवों में वायु का अधिक होना होता है।

कर्म– वात षरीर एवं संसार की सभी क्रियाऐं करता है। संपूर्ण षरीर में प्राण एवं अन्य वायु का संचालन करता है उत्साह और बल बढ़ाता है।

वातवृद्धि के कारण – जल्दीं–जल्दी खाने से, देर रात के भोजन करनें से, रात्रि जागन करने से, लंघन करने से, वेगों के रोकने से वातवृद्धि होती है। साथ ही षोक, दुःख, भय, अतिपरिश्रम, भूखे पेट रहना, ठंडा कटु कषाय भोजन करने से वात में वृद्धि होती है।

विकृत वात के लक्षण– षूल, दौर्वल्य, कृषता, अरूचि, अनिद्रा आदि उत्पन्न रोग पक्षाघात, साइटिका, कम्पवात आदि अस्सी प्रकार के वात रोग हैं।

वात की चिकित्सा – वस्ति, स्नेहन, सेक, श्वेदन, मालिष, तिल तेल सेवन, हींग, घी, अजवायन आदि से इसकी चिकित्सा करते हैं। वस्ति क्रिया इसमें श्रेष्ठ चिकित्सा है।

पित्त

ष्षास्त्रों में पित्त के निम्न प्राकृतिक कर्मों का वर्णन मिलता है "दर्षन (देखना) पक्ति (परिपाक) उष्मा (गर्मी) क्षुधा, तृष्णा, षरीर की मृदुता, प्रभा, प्रसाद और मेघा, ये सब अविकृत पित्त के कारण हैं।

गुण– उष्मा तीक्ष्ण, आंषिक स्निग्ध, तेजस्वी, ऊर्ध्वगतिषील और लाल पीला।

प्राकृतिक कार्य– पाचन की क्रिया में तेजी लाने में, षरीर की गर्मी बनाये रखने में, दर्षन कराने में, हृदय बल बढ़ाने में, रक्त के रंजन में, पित्त के कार्य सम्मलित हैं।

पित्त प्रकोप कारण :– यौवन काल में ग्रीष्म एवं षरद ऋतु में पित्त बढ़ता है।

- पित्तज आहार का ज्यादातर सेवन से पित्त बढ़ता है।
- कटु, अम्ल, लवण रस युक्त पदार्थ पित्त को बढ़ाते हैं।
- क्रोध, उपवास, दिन में निद्रा से पित्त बढ़ता है।

विक्रय पित्त के लक्षण :– दाह, तृष्णा षरीर का ताप बढ़ना, मुख लाल पीला होना अल्पनिद्रा क्रोध।

पित्तजन्य रोग :– दाह, तृष्णा सन्ताप, अल्पनिद्रा अम्लपित्त, दिग्धाजीर्ण, भस्मकाग्नि रक्त पित्त, मुखपाक, कामला आदि 40 प्रकार के पित्तज रोग।

पित्तव्याधि उपचार :– दूध, घी, षक्कर, गुड़, द्राक्षा, मीठे फल, चंदन लगाना, ठंडी हवा षीतल जल स्नान, चांदनी, छाया आनन्द, प्रसन्नता षान्ति, रक्त साव, ठंडा पतला लेप, निद्रा, ठण्डा आहार, तिक्त मधुर कषाय, दृव्य पित्त षामक है। परवल, आंवला सेवन।

श्रेष्ठ :– पित्तषमन में घी श्रेष्ठ है।

कफ

ष्षास्त्रों में कफ के निम्न प्राकृतिक कर्मों का वर्णन मिलता है "स्नेह, वन्ध, स्थिरत्व, गौरव, वृषता, वल, क्षमा, धैर्य और अलोभ" यह सब अविकृत कफ के कार्य हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है –

स्नेह (स्निग्धता करना) – कफ स्वयं स्निग्ध होता है, अतः जहां–जहां कफ (ष्लेष्मा) होगा, वहां–वहां स्निग्धता प्रतीत होगी।

वन्ध (वन्धन करना) – संयोग को वन्ध कहा जाता है। कफ संयोग करता है इसलिए कहते हैं कि कफ वन्धन कर्म करता है।

स्थिरत्व – कफ का गुण स्थिर है यह कफ स्थिरत्व के कर्म के कारण षरीर के अवयवों में इतना घनिष्ट संघटन उत्पन्न कर देता है कि षरीर अवयव स्थान भ्रष्ट नहीं हो पाते।

गौरव (गुरूता उत्पन्न करना) – भारीपन पैदा करना कफ का कर्म कहा जाता है। कफ जब गतिमान हो **सूक्ष्म** – सूक्ष्म स्त्रोतों को रोकता है तो षरीर में भारीपन पैदा होता है।

वृषता (मैथुन में सार्म्थय उत्पन्न करना) – कफ के द्वारा शुक्र की वृद्धि होती है। कफ और शुक समान गुण वाले द्रव है अतः मैथन में सामर्थ्य उत्पन्न करता है।

वल – स्निग्धता, वन्धन करनेवाला, और स्थिरता उत्पन्न कर कफ बलकारक कर्म का प्रतिभूत है।

क्षमा – कफ में क्रोध नहीं आता क्योकि पित्त को क्रोध का कारण कहा जाता है। अतः कफ के द्वारा क्षमा की उत्पत्ति होती है।

धैर्य – स्थिरता आदि के कारण कफ मानव मे धैर्य की उत्पत्ति करता है । कफ में स्थिरता रहती है इसलिए कफ को अलोभकारी भी कहा जाता है।

कफ वृद्धि के लक्षणं – वचपन में वसन्त, हेमन्त में अतिआहार से, अति निद्रा से, अधिक आराम से, ठंड, भारीपन, चिकना, खट्टा, अधिक लवणयुक्त आहार के सेवन से कफ बढ़ता है जिससे अरूचि, आलस, स्निग्धता, स्वार्थ, अज्ञान आदि तामसिक गुणों का वैभव व्यक्त होता है।

कफ के रोग – प्रमेह, कुष्ठ, शोध, अरूचि, प्रतिषाय, मन्दाग्नि, कृमि, अतिनिद्रा आदि कफ से बीस प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा – मद्य, गरम पदार्थों के सेवन, विरेचन, षिरोविरेचन, हल्का सुपाच्य–अल्प आहार, दुःख षोक जागरण आदि से कफ का समन होता है।

प्रश्न 3.7 त्रिदोष क्या हैं ?

प्रश्न 3.8 त्रिदोषों का शारीरिक महत्व समझाइये ?

प्रश्न 3.9 कफ की विकृत अवस्था में उत्पन्न रोग समझाइये ?

स्थिरत्व – कफ का गुण स्थिर है यह कफ स्थिरत्व के कर्म के कारण षरीर के अवयवों में इतना घनिष्ट संघटन उत्पन्न कर देता है कि षरीर अवयव स्थान भ्रष्ट नहीं हो पाते।

गौरव (गुरूता उत्पन्न करना) – भारीपन पैदा करना कफ का कर्म कहा जाता है। कफ जब गतिमान हो **सूक्ष्म** – सूक्ष्म स्त्रोतों को रोकता है तो षरीर में भारीपन पैदा होता है।

वृषता (मैथुन में सार्म्थय उत्पन्न करना) – कफ के द्वारा शुक्र की वृद्धि होती है। कफ और शुक समान गुण वाले द्रव है अतः मैथन में सामर्थ्य उत्पन्न करता है।

वल – स्निग्धता, वन्धन करनेवाला, और स्थिरता उत्पन्न कर कफ बलकारक कर्म का प्रतिभूत है।

क्षमा – कफ में क्रोध नहीं आता क्योकि पित्त को क्रोध का कारण कहा जाता है। अतः कफ के द्वारा क्षमा की उत्पत्ति होती है।

धैर्य – स्थिरता आदि के कारण कफ मानव मे धैर्य की उत्पत्ति करता है । कफ में स्थिरता रहती है इसलिए कफ को अलोभकारी भी कहा जाता है।

कफ वृद्धि के लक्षणं – वचपन में वसन्त, हेमन्त में अतिआहार से, अति निद्रा से, अधिक आराम से, ठंड, भारीपन, चिकना, खट्टा, अधिक लवणयुक्त आहार के सेवन से कफ बढ़ता है जिससे अरूचि, आलस, स्निग्धता, स्वार्थ, अज्ञान आदि तामसिक गुणों का वैभव व्यक्त होता है।

कफ के रोग – प्रमेह, कुष्ठ, शोध, अरूचि, प्रतिषाय, मन्दाग्नि, कृमि, अतिनिद्रा आदि कफ से बीस प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा – मद्य, गरम पदार्थों के सेवन, विरेचन, षिरोविरेचन, हल्का सुपाच्य–अल्प आहार, दुःख षोक जागरण आदि से कफ का समन होता है।

प्रश्न 3.7 त्रिदोष क्या हैं ?

प्रश्न 3.8 त्रिदोषों का शारीरिक महत्व समझाइये ?

प्रश्न 3.9 कफ की विकृत अवस्था में उत्पन्न रोग समझाइये ?

दिनचर्या (Dinacharya)

जिस प्रकार आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य पूर्ण स्वास्थ्य के आहार और व्यायाम एवं स्वच्छता उसके साधन है उसी प्रकार व्यस्थित दिनचर्या स्वास्थ्य के आधार का साधन है इसमें दिन रात में क्या काम, कब और किस प्रकार करना चाहिए, इसके कुछ नियम प्राचीन काल से ही भारतीय जीवन परम्परा में चले आ रहे हैं। आधुनिक षिक्षित, नयी सभ्यता के फेर में उन प्राचीन नियमों की उपेक्षा करते हैं इस कारण पूर्ण स्वस्थ्य नहीं रहते। दिनचर्या और रात्रिचर्या के प्राचीन नियम हमारे देष की जलवायु और सामाजिक स्थिति के अनुकूल निर्धारित है इसलिये पूर्ण स्वस्थ्य रहने की इच्छा रखने वाले हर भारतवासी को इनका अवष्य पालन करना चाहिए।

प्रातः काल उठना – नित्य ही सूर्यादय से इतना पहले जागकर विस्तर छोड़ देना चाहिए कि षौचादि से निवृत होकर साफ–सुथरा और प्रसन्न मन से उठते हुए नये सूर्य का स्वागत करने को पहले से ही तैयार रहें। गर्मी के दिनों में सुबह चार वजे और जाड़े में पांच साड़े पांच बजे अवष्य विस्तर छोड़ देना चाहिए। सूर्योदय के चार घड़ी पूर्व के समय को हमारे पूर्वजों ने "ब्रह्ममुहूर्त" अर्थात सबसे उत्तम समय कहा है। अन्य पषु–पक्षी और नवजात षिषु उस समय अवष्य जाग जाते हैं। इससे यह सिद्ध है कि उस समय सोकर उठने का प्राकृतिक नियम है। सूर्योदय से पूर्व के उस श्रेष्ठ और मूल्यवान समय को विस्तर पर पड़े–पड़े स्वप्न देखना या आलस्य में खो देना बड़ा लज्जाजनक है।

जिन्हें देर तक सोने की आदत हो उन्हें तुरन्त सुधार करना चाहिए आरम्भ में कुछ कठिनाई हो सकती है परन्तु धीरे–धीरे अपने आप सुबह जल्दी उठने की आदत पड़ जायेगी।

नियमपूर्वक सूर्योदय से एक घन्टे पूर्व उठ जाने से स्वास्थ्य पर तत्काल ही उत्तम प्रभाव पड़ने लगता है। चेहरे पर तेज और लालायी आ जाती है, शरीर फुर्तीला वलवान और सुन्दर दिखाई देने लगता है, मन अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है।

आयुर्वेद के षास्त्रों में ब्रह्ममुहूर्त में उठना श्रेष्ठ बताया है।

ब्रह्ममुहूर्ते बुद्धयेत स्वस्थो रक्षार्धआयुशः।
तत सर्वाध शान्त्यर्थ स्मरेच्च मधुसुदनम्।।

अर्थात स्वस्थ्य पुरूष को चाहिए कि आयु की रक्षा के लिये ब्रह्म मुहूर्त में उठे सब पापों की षान्ति के लिये परमात्मा का नाम स्मरण करे।

शीतल जल पीना – भारत देष उष्ण जलवायु वाले देषों में है। इसमें प्रातः सोकर उठने के साथ ही किसी ताम्रपत्र में रखा हुआ ठंडा जल पीना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है।

शौच – प्रातः कालीन षारीरिक क्रियाओं में सर्वोपरि आवष्यक उठते ही जल पीकर षौच जाना है। बचपन से ही बच्चों को सुबह उठने और उठते ही पाखाना जाने की आदत डालनी चाहिये इससे दिनभर चित्त प्रसन्न और षरीर स्फूर्तिमय बना रहता है।

प्रातः घूमना – संसार के सर्वश्रेष्ठ विद्धानों, विचारकों और वैज्ञानिकों का यह निष्चित मत है कि प्रातःकाल को षुद्ध वायु में टहलना स्वास्थ्य के लिये बहुत ही हितकर है इसलिए प्रातःकाल षौचादि से निवृत होकर वस्ती के बाहर खुली हवा में कुछ देर तक अवष्य टहलना चाहिए।

दातुन करना – षौच से निवृत होकर घूमते समय ही या घूमने से लौटकर दातुन करनी चाहिए। दांतों की सफाई के अतिरिक्त जीभ का मैल भी जीभी से खरोंच कर निकाल देना चाहिए।

तेल मालिस व्यायाम – प्रातः जब सूर्य की भीनी–भीनी धूप आने लगे तब षरीर में तेल मालिस बड़ा स्वास्थ्यकर होता है। इसी समय थोड़ा व्यायाम भी करना चाहिए। विद्यार्थी वर्ग एवं लिखा–पढ़ी का काम करने वाले जिनको कोई षारीरिक श्रम का काम नहीं करना पड़ता उन्हें नियमित रूप से कुछ न कुछ व्यायाम अवष्य करना चाहिए। सूर्य नमस्कार श्रेष्ठ व्यायाम है। तेल मालिस व्यायाम के वाद ही ठीक होता है। व्यायाम और मालिस के बाद कमसे कम पन्द्रह मिनट व्यायाम करना चाहिए।

स्नान करना– उत्तम स्वास्थ्य के लिए नित्य–षीतल जल से स्नान करना आवष्यक है। अनुकूल न पड़े तो जाड़े के दिनों में षीतोष्ण जल से नहाया जा सकता है। थोड़े पानी से नाममात्र का स्नान व्यर्थ है। नदी में तैरकर या काफी पानी से मलमल कर स्नान करना चाहिए और गीले खुद्दरे तौलिये से रगड़कर बदन का मैल उतारना चाहिए।

आराधना – स्नान के बाद यथासंभव परमात्मा की आराधना (इबादत) अवष्य करनी चाहिए। हम जिस धर्म को मानते हैं उसकी भक्तिपूर्वक श्रद्धा से प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना– हमारा आज का दिन षांतिपूर्वक, निष्कर्म और सफलता के साथ बीते। आराधना से मानसिक षाक्ति बढ़ती है और जो जीवन के हर क्षेत्र में निष्चित सफलता देने वाली होती है।

स्वल्पाहार (नाश्ता) – स्नान और आराधना के उपरांत जिन्हें स्कूल या अन्य दफतरों की नौकरी पर जाना हो उन्हें सुबह का हल्का नाष्ता करना चाहिए। दस–ग्यारह बजे से दफतर जाने वाले व्यक्तियो अथवा विद्यार्थियों को प्रातः नाष्ता करना आवष्यक नहीं। उन्हें तो नौ बजे लगभग पहला भोजन कर लेना चाहिए। जिनको अपने व्यवसाय के समय स्थितिवष दोपहर को ही भोजन के लिए अवकाष मिलता हो तो उन्हें सुबह हल्का नाष्ता करना आवष्यक है।

भोजन – अपने व्यवसाय कार्य के सुविधानुसार ही लोगों को भोजन का समय निष्चित करना चाहिए। तथापि इतना निष्चित अनिवार्य है कि भोजन का जो समय निष्चित हो उसका नियमित पालन करना चाहिए। जो सुबह नाष्ता करें उन्हें बारह बजे या एक बजे भोजन करना चाहिए। भोजन के उपरांत कम से कम आधा घंटे बाईं करवट लेटकर विश्राम अवष्य करना चाहिए।

जीविकोपार्जन – दैनिक जीविका कार्य को सदैव अपना उच्च कर्तव्य मानकर पूरी ईमानदारी, उचित परिश्रम, जिम्मेदारी और मन लगाकर करना चाहिए। किसी भी काम को न तो षक्ति से अधिक परिश्रम

करके करना चाहिए और न ही कमजोरी की आदत डालनी चाहिए। अगर अपना काम मुस्तैदी से करेगें तो अपका मन सदा स्वस्थ्य, संतुष्ट, प्रसन्न और निर्भीक रहेगा, जो पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति में सर्वदा सहायक होता है।

संध्याकाल – दैनिक जीविका कार्य या पढ़ाई से निपटकर एक बार षाम को भी षौच जाना चाहिए। षौच के बाद हाथ–पैर और मुंह की सफाई करना अत्यंत अनिवार्य है।

रात्रि भोजन – रात को सात–आठ बजे भोजन कर लेना चाहिए, यह समय बारह महीनों के लिए ठीक है। भेाजन के बाद थोडी देर टहलना चाहिए फिर कुछ देर घर में बच्चों के साथ मिलना उनसे बातें करनी चाहिए।

शयन – रात्रि के नौ–दस बजे भगवत नाम स्मरण करते हुए सो जाना चाहिए। नित्य निष्चित समय पर सो जाना स्वास्थ्य के लिए परम हितकारी होता है।

सारांश – इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूर्ण स्वास्थ्य से तात्पर्य आंतरिक एवं बाह्य विकारों से मुक्त होना है। इस के मुख्य आधार दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार, निद्रा,संयम, पंचकर्म आदि सम्मलित हैं। जिससे हमें उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। योग में जिस प्रकार अष्ठांग योग के द्वारा हम पूर्ण स्वास्थ्य एवं निरोगी जीवन प्राप्त करते हैं उसी प्रकार आयुर्वेद में आष्टांग आयुर्वेद के द्वारा हम अपने षरीर के चिकित्सा द्वारा षरीर को आंतरिक एवं बाह्य विकारों से मुक्त करते है एवं अपनें षरीर की आंतरिक षक्ति का जागरण करते हैं जिससे हमारे जीवन का सर्वांगीण विकास होता हैं और हम पूर्ण स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रश्न 3.10 दिनचर्या क्या है ?

प्रश्न 3.11 जीवन में दिनचर्या के महत्व पर प्रकाश डालिये ?

अभ्यास – अपनी दिनचर्या का चार्ट बनाइये ?

शब्दावली – अष्टांग योग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण ध्यान, समाधि,

धातु	–	रस, रक्त, मांस, मेध, अस्थी, मज्जा, षुक्र
ज्ञानेन्द्रि	–	श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण
कर्मेन्द्रि	–	हस्त, पाद, वाणी, उपस्थ, गुदा
उपस्तंभ	–	आहार, निद्रा, संयम (ब्रह्मचारी)

अभ्यास – भावातीत ध्यान एवं सिद्धि कार्यक्रम –

योगासन

व्यायाम

प्रातःसैर करना

••••••••••••••

अध्याय–4

महर्षि सुरक्षा का परम सिद्धान्त

(Maharishi Absolute Theory of Defence)

परिचयः– समस्त भूमंडल पर सदैव सुख, षान्ति, सम्पन्नता, समानता, निर्भयता, अजेयता और पूर्ण जीवन की स्थायी स्थापना के पवित्र–पावन उद्देष्य को लेकर महर्षि जी ने सुरक्षा नीति बनाई है। भारतवर्ष के लिए आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा दोनों ही अत्यन्त गंभीर विषय हैं। अब तक की कोई भी सरकार सुरक्षा के विषय में पूर्णतः गंभीर होकर निर्णय नहीं ले सकी है।

सुरक्षा के विषय में यह भली–भांति समझ लेना चाहिए कि आज पूरे विष्व में कोई भी देष पूर्णतः सुरक्षित नहीं हैं। अपना भारतवर्ष भी उन्हीं में से एक है। "फूट डालों और राज करो" की कूटनीति ने देष की राष्ट्रीय चेतना को टुकड़े–टुकड़े करके बिल्कुल छिन्न–भिन्न कर दिया है। युगों–युगों से भारतवर्ष में जातियां, संप्रदाय, मत–मतान्तर और अलग–अलग विष्वास के समूह रहे हैं, किन्तु इस समय विदेषी कूटनीति ने इन सबको एक दूसरे के विरूद्ध भड़काकर भारतवासियों के बीच दूरियां बढ़ा दी हैं। विदेषी षक्तियों को यह ज्ञात है कि एकता के रहते हुए भारतवर्ष पर पुनः अपना राज्य स्थापित नहीं कर सकते। अतः भारत की राष्ट्रीय एकता को तोड़ने और घर–घर को लोकतंत्र के नाम पर बांट देने की बहुत गहरी चाल चली जा रही है।

एक तरफ तो विभिन्न प्रांतों में स्थानीय समस्याऐं कई–कई आंदोलन और प्रथकतावादी ताकतें अपनी पकड़ मजबूत करती जा रहीं हैं दूसरी तरफ सीमा पार से हमारे पड़ोसी ही हम पर घात लगाये बैठे हैं कि कब अवसर का लाभ उठाकर वे हम पर धावा बोल सकें। हमारी सरकारें "घटना घट जाने पर पुलिस की कार्यवाही " की कहावत को साकार करने के लिए कोई कसर वाकी नहीं रखी। भारतीय वैदिक सुरक्षा के सिद्धांत पर उनका कोई ध्यान नहीं गया, उनका ध्यान गया तो विदेषी अस्त्र–षस्त्रों पर और उनके भंडारन पर। सुरक्षा का सिद्धांत यह है कि यदि सुरक्षा का कुछ प्रतिषत भाग भी विदेषी षक्ति पर निर्भर हो तो राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में रहती है किन्तु यहां तो उलटा ही है, सारी सुरक्षा व्यवस्था ही विदेषी तकनीक पर निर्भर है। अस्त्र–षस्त्र विदेषी हैं, व्यवस्था विदेषी, प्रषिक्षण और सेना के कम्पूटर भी विदेषी है, सुरक्षा प्रषासन की विधि विदेषी है।

आज के आण्विक और परमाण्विक विस्फोटकों के युग में हम तभी तक सुरक्षित हैं जब तक हम आक्रमण नही हुआ है। आज के युद्ध भारतीय वीरों के युद्धों की तरह आमने–सामने लड़े जाने वाले युद्ध

नहीं है। आज तो कायरों की तरह छुपकर इलेक्ट्रोनिक युद्ध, केमिकल युद्ध, बायोलाजिकल युद्ध, मिसाइल युद्ध एवं आर्थिक युद्ध लडे जाते हैं। भारतवर्ष के पास इन युद्धों पर विजय पाने का क्या कोई उपाय है ? महर्षिजी के वैदिक सिद्धांतों के अनुसार यदि इसका कोई ठीक उत्तर है तो वह है "युद्ध के पूर्व की विजय" का सिद्धांत है। हेयं दुःखम् अनागतम्। तत् सन्निधौ वैरत्यागः।। आदि वैदिक सुरक्षा के सिद्धांत हैं। हमारी वैदिक परंपरा में अनेकों सुरक्षा कवचों का सिद्धांत और योग बताया गया है। आज के युग में आधुनिक अस्त्र–षस्त्रों को सिर्फ एक ही काट है–वैदिक मंत्रों, वैदिक कवचों से देष की सुरक्षा का उपाय। भारतीय मंत्रषाक्ति की विद्या अमोद्य विद्या है और यह विद्या केवल भारतीयो के पास ही उपलब्ध है। महर्षि जी ने इसके बहुत से प्रयोग किऐ हैं। भारतीय राष्ट्रीय चेतना में महर्षि के भावातीत ध्यान एवं सिद्धि कार्यक्रम के सामूहिक अभ्यास द्वारा सतोगुण की इतनी अधिक वृद्धि करेगी कि इस सात्विकता के प्रभाव में षत्रु राष्ट्र भी मित्रवत् व्यवहार करेगें। " तत्सन्निधौ वैरत्यागः" की वैदिक युक्ति चरितार्थ होगी। न केवल षत्रु मित्र बनेगें अपितु षत्रु उत्पन्न ही नहीं होगें।

डॉ. टोनी नैडर का अनुसंधान देष की आन्तरिक सुरक्षा के लिए भी बहुत अधिक उपयोगी है। राष्ट्रीय एकता के लिए इस अनुसंधान के परिणामों का सबसे अच्छा उपयोग भारतवर्ष में ही हो सकता है। डॉ. नैडर ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के षरीर की सरंचना वेद के चैतन्य स्पंदनों से हुई है। आत्म चेतना के स्पंदन ही वेद के चैतन्य स्पंदन है। और इन चैतन्य स्पंदनों से ही षरीर के विभिन्न अंग–प्रत्यंगों की सरंचना हुई है। वह मनुष्य भारतीय हो चाहे अमेरिकन हो या यूरोपियन हो या अरब देषों का हो किसी भी जाति या धर्म का हो– यदि वह मनुष्य है तो वह वैदिक स्पंदनों को स्थूल षरीर धारी है। अतः भारतीय राष्ट्रीय एकता के लिए महर्षि प्रणीत वैदिक सिद्धांतों और प्रयोगों के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है जो सुरक्षा नीति के लिए अनिवार्य है।

यह वैज्ञानिक खोज पूर्णतः प्रकृति के उन नियमें की तरह ही है जिसमें कि प्रकृति प्रषासन प्रत्येक मनुष्य के लिए समान है। वेद कि यह वैज्ञानिक उपयोगिता प्रत्येक भारतीय को एकता के अखंड सूत्र में सदा के लिए बांधे रखेगी। अत्यंत आवष्यक है कि देष की आंतरिक सुरक्षा के लिए इस वैज्ञानिक तत्व से हर भारतीय नागरिक को परिचित होना चाहिए जिसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता जो आंतरिक सुरक्षा हेतु इस वैज्ञानिक अनुसंधान को पूर्णतः प्रयोग में लायेगी। यह महर्षि सम्पूर्ण सुरक्षा नीति का अनिवार्य घटक है।

प्रश्न 4.1 महर्षि की सम्पूर्ण सुरक्षा नीति का सामान्य परिचय दीजिए ?

अजेयता में प्रभुसत्ता (Sovereignty in Invincibility)

मेरा सुरक्षा का दर्षन सृजन पूर्ण आरंभ से बना है, जहां अप्रत्यक्ष समग्र एक आदम्य प्रवाह है, जहां सुरक्षा की संपूर्ण आधार षिला अजेयता के इस स्तर पर है।

अजेयता संपूर्ण षुद्ध अस्तित्व या षुद्ध चेतना सर्वोत्कृष्ट चेतना के क्षेत्र की दुर्लभ सम्पत्ति है। यह संपूर्ण षुद्ध अस्तित्व का अनंत क्षेत्र या षुद्ध चेतना, अपरिवर्तनीय, अनंत, अक्षर वाला षुद्ध बुद्धिमत्ता का क्षेत्र है। यह प्रकृति के सभी नियमों का घर है। प्राकृतिक नियमों का घर एकीकृत क्षेत्र – ऋग्वेद की संहिता–ब्रह्माण्ड का संविधान – जो समग्र ब्रह्माण्ड के प्रषासन के लिये उत्तरदायी है।

कोई इस षुद्ध अस्तित्व के सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र चेतना के संगत, पावन, एकीकृत संघटन को बाधित या नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि प्रत्येक वस्तु जो अस्तित्व में है। अपने स्व–प्रतिक्रियात्मक गति विज्ञान की अभिव्यक्ति है।

अपनी संपूर्ण सुसंगतता, एकीकृत ढाचें एवं स्वकेंद्रित, स्व–क्रियात्मक गति विज्ञान के कारण षुद्ध अस्तित्व या षुद्ध बृद्धिमत्ता या षुद्ध चेतना का यह क्षेत्र किसी भी विध्न को अपने संघटन और निरन्तर किसी भी विध्न को अपने संघटन में न आने देते हुए अपनी अनष्वरता को अंनत संरक्षण देता है।

ध्यान के अभ्यास द्वारा व्यक्तिगत चेतना सर्वोत्कृष्ट चेतना की अवस्था को प्राप्त कर लेती है। षुद्ध अस्तित्व के क्षेत्र की अजेय संगति विचार एवं इच्छा के प्रत्येक क्षेत्र में अभिव्यक्ति होनी आरंभ हो जाती है। व्यक्ति को अदम्य षक्ति, सम्पूर्ण स्वास्थ्य और इच्छाओं की समग्र पूर्ति प्राकृतिक नियम के द्वारा प्राप्त हो जाती है।

जब एक प्रतिषत जनसंख्या सर्वोत्कृष्ट ध्यान कार्यक्रम का अभ्यास करती है या एक प्रतिषत वर्गमूल जनसंख्या सर्वोत्कृष्ट ध्यान – सिद्धि कार्यक्रम व यौगिक उड़ान का अभ्यास करती है। षुद्ध अस्तित्व की अनंत संगति राष्ट्र की समग्र सामूहिक चेतना में जीवित होकर महर्षि प्रभाव का सृजन करती है। परिणामस्वरूप षुद्ध अस्तित्व के क्षेत्र की अजेयता और अनष्वरता के गुण सम्पूर्ण राष्ट्र में दिखाई देने आरंभ होते हैं, जो प्राकृतिक नियम की सर्वषक्तिमान सत्ता की अदम्यषक्ति प्राप्त करते हैं।

महर्षि प्रभाव राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अजेय अस्त्र का सृजन करता है, जिसे किसी भी बाहरी नकारात्मक प्रभाव द्वारा बेधा या तोड़ा नहीं जा सकता।

प्रश्न 4.2 महर्षिजी के सुरक्षा नीति के सिद्धांत को समझाइये ?

प्रश्न 4.3 महर्षिजी के सुरक्षा सिद्धांत को कैसे सफल बनाया जा सकता है ?

अजेय सुरक्षा (Invincible Defence)

बचाव का महासूत्र

(A grand formulas for prevention)

अजेय सुरक्षा का अर्थ है कि बचाव की आवष्यकता ही न पड़े और राष्ट्र में षांति, स्वतंत्रता और सम्पन्नता–एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र की स्वाभाविक षान कायम रहे।

यदि षत्रु ने होगा तो रक्षा की आवष्यकता ही नहीं रहेगी, राष्ट्र का कोई षत्रु पैदा न होगा और वहां अजेय राष्ट्रीय चेतना होगी, जो षांति का अदम्य षांत विकीर्ण करेगी।

किसी सरकार के रक्षा विभाग मे समस्याओं को रोकने की क्षमता होनी चाहिए मैं प्रत्येक राष्ट्र के रक्षा विभाग को एक ऐसा सूत्र एवं व्यावहारिक योजना देना चाहता हूँ कि रक्षा षब्द का सम्मान पूरा हो सके। रक्षा सम्मानपूर्वक तभी होगी जब राष्ट्र ऐसे अदम्य स्तर तक उठ सके जहां उसे कोई षत्रु न होने के कारण रक्षा की आवष्यकता ही न पड़े।

प्रत्येक राष्ट्र के रक्षा विभाग में एक थल सेना, एक वायुसेना तथा नौ सेना होती है परन्तु समय–समय पर थल, जल व वायु तीनों सेनाएं आक्रमण के भय से एवं अनिष्चय में लगातार घिरकर युद्ध की तैयारियों में व्यस्त रहती हैं, इससे ऐसा लगता है कि रक्षा में हर जगह कूटनीतिक कमी है।

सुरक्षा की इस कूटनीतिक कमी का कारण व्यावहारिक रूप से विंध्वस पर आधारित होती है, जहां मरने मारने की तैयारी हो। प्रत्येक आदमी को हर पल मरने या मारने के लिये तैयार रहना पड़ता है रक्षा का पूर्ण सिद्धांत आक्रमण पर आधारित होने के कारण जीवन के प्रति असहृध्य हो जाता है।

प्रश्न 4.4 अजेयता का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 4.5 अजेयता का गुण कैसे प्राप्त किया जाता है ?

अजेयता (Invincibility)

सुरक्षा का आधार

(The Basis of Defence)

रक्षा का वास्तविक आधार अजेयता है। अजेयता का यह तत्व अब प्रत्येक राष्ट्र के रक्षा विभाग को मानव षरीर विज्ञान में वेद एवं वैदिक साहित्य की खोज के साथ उपलब्ध है; जो कि प्राकृतिक नियम के सम्पूर्ण सृजन आयाम की खोज है। प्राकृतिक नियम की अनंत संगठन षक्ति, प्राकृतिक नियम अजेय विकासत्मक षक्ति जो प्रत्येक में विकासवाद की प्रक्रिया में उपलब्ध है; जहां हर वस्तु लगातार षुद्ध सृजनात्मक बुद्धिमत्ता से षरीर विज्ञान की वस्तुगत संरचना में विकास कर रही है।

अब यह प्रत्येक के लिये संभव है कि वह प्राकृतिक नियम की इस विकासात्मक षक्ति को अपनी दैनिक जीवन की जागरूकता और जीवित अजेयता की जीवत करें। अपने वातावरण में अजेयता विस्तीर्ण करें और साथ–साथ राष्ट्र के लिए अजेय अस्त्र प्रदान करें।

जब कोई व्यक्ति अजेयता विकीर्ण करता है। संपूर्ण राष्ट्र चेतना मजबूती से एकीकृत होकर अजेय हो जाती है। अजेयता के इस आधार पर किसी भी देष का रक्षा विभाग षत्रु का जन्म न होने देने की प्राकृतिक तात्कालिक योग्यता उत्पन्न करेगा; जो बचाव का अंतिम लक्ष्य है– स्वतंत्रता की संपूर्ण स्थिति।

माइसनर इफैक्ट

(The Meissner Effect)

म्हर्षि सुरक्षा नीति में अजेयता का गुण प्रमुख हैं – अजेयता के गुण को समझने के लिए क्वांटन फिजिक्स का उदाहरण माईजनर इफैक्ट महत्वपूर्ण है। जब व्यक्ति भावातीत ध्यान का अभ्यास करता है तो उसके मस्तिष्क की इकाईयां जिन्हे न्यूरान्स कहते हैं, उनमें क्रमबद्धता तथा सुसंबद्धता एवं समन्वय बनने से अजेयता का गुण किस तरह स्थापित होता है इस उदाहरण द्वारा समझेगें।

जब आर्डिनरी कन्डक्टर का तापमान 273.16 सेन्टीग्रेट यानि कि ऐवस्यूलूट जीरो (परम शून्य ताप) तक लाते हैं तब आर्डिनरी कन्डेक्टर में सुपर कंडक्टर गुण आ जाते है। सामान्य ताप पर आर्डिनरी कन्डेक्टर के इलैक्ट्रांस (जो धातु की इकाईयां हैं) में अववस्था बनी होती है। और उनमें क्रमबद्धता तथा समन्वय का अभाव होता है इसके कारण जब हम आर्डिनरी कन्डेक्टर के धातु को चुम्बकीय क्षेत्र में लाते